आदि मार्ग

(चार नाटक)

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

साहित्यकार संसद्

प्रथमा वृत्त १०

प्रकाशक
साहित्यकार संसद, प्रयाग।

मूल्य ईंटिक ७)
साधारण ५)

मुद्रक—
हरप्रसाद वाजपेयी
कृष्णा-प्रेस, २६ हिवेट रोड, प्रयाग।

सं० २००७

माँ की पुण्य-स्मृति में

इन नाटकों को खेलने से पहले लेखक की आज्ञा लेना आवश्यक है।

आल इंडिया रेडियो के पास इन नाटकों का अधिकार नहीं। प्रत्येक नाटक के लिए लेखक को रायल्टी देना अनिवार्य है।

बिना लेखक की अनुमति के इनमें से कोई नाटक किसी संकलन में न दिया जाय।

अपनी बात

'देवताओं की छाया मे', 'तूफान से पहले,' 'चरवाहे,' 'क़ैद और उडान' के बाद मेरे नाटकों का यह पांचवा संग्रह पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हैं। 'छठा बेटा' को छोड़कर (जो १६३८-४० में लिखा गया) शेष तीनों नाटक १६४२ के मध्य से १६४३ के मध्य तक, लगभग एक वर्ष के समय में लिखे गये।

जहां तक लम्बाई का प्रश्न है, इसके नाटक पहले तीन संग्रहों से भिन्न और चौथे सग्रह के निकट हैं। अभी कुछ दिन पहले दिल्ली के एक संकलनकर्ता ने 'उडान' को एकांकी सग्रह मे दे दिया। 'उड़ान' एकांकी न होकर पूरा नाटक है। इसी प्रकार 'कैद,' 'भँवर' और 'छठा बेटा' भी पूरे नाटक हैं; चाहे फिर ये तीनों एक दिन में समाप्त हो जाते हैं, बल्कि छठा बेटा तो वास्तव में उतनी ही घड़ियों में समाप्त हो जाता है जितने में कि यह रंगमंच पर खेला जाता है।

प्रस्तुत संग्रह मे 'आदि मार्ग' को आप एकांकी कह सकते हैं। 'अंजों दीदी' को भी खींच खांचकर एकांकी की परिधि में लाया जा सकता है, पर 'भँवर' और 'छठा बेटा' तो पूरे नाटक हैं। उसी प्रकार जैसे 'क़ैद' और 'उड़ान' पूरे नाटक हैं। आधुनिक एकांकी तथा आधुनिक बड़े नाटक की कला पर यहाँ कोई लेख लिखना मुझे अभीष्ट नहीं, इसलिए इस ओर संकेत भर कर दिया है। आधुनिक एकांकी और बडे नाटक में जो अन्तर है, उसे बिना जाने कुछ संकलन-कर्ता बड़े नाटकों को एकांकी सग्रहों में दे देते हैं। यह बात जहाँ उनके अज्ञान की परिचयाक है वहाँ पाठकों के अज्ञान में भी वृद्धि करती है।

कुछ संकलनकर्ता पहले नाटक पुस्तक रूप में छाप लेते हैं फिर आज्ञा माँगते हैं। यह बात बड़ी कष्ट-प्रद-स्थिति पैदा कर देती है। मुझे इसी कारण इस बार दो एक मामलों में अदालत की शरण लेनी पडी। साधारण संकलन कर्ताओं और प्रकाशकों को भारत के कापी राइट एक्ट का ज्ञान नहीं, जिसके कारण यह भद्दी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सकलनकर्ता ऐसा न करें, इसके लिए ये चन्द पक्तियाँ पूर्व-सूचना के रूप में लिखना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

५ खुसरो बाग रोड,
प्रयाग
फरवरी १६५०

उपेन्द्रनाथ अश्क

अनुक्रम

"कोई सुन्दर कलाकृति लेखक ही से नहीं, पाठक से भी (आलोचक से और भी अधिक) सूझ-बूझ और संतोष की अपेक्षा रखती है।"

मैं नाटक कैसे लिखता हूँ

इस 'कैसे' का उत्तर देने के लिए जब मैं पिछले कुछ वर्षों पर दृष्टि-निपात करता हूँ तो पाता हूँ कि नाटक लिखने के लिए मैंने कोई विशेष कला-बाज़ी नहीं लगायी। जिस प्रकार मेज़-कुर्सी पर बैठ कर, कलम दवात या फाऊन्टेन पेन की सहायता से, मैंने कहानी या उपन्यास लिखे है, उसी प्रकार नाटक! (कविताओं का उल्लेख मैंने इसलिए नहीं किया कि कविताएँ मैंने कभी बैठ कर नहीं लिखीं। कमरे में टहलते; ट्राम, बस या गाड़ी में यात्रा करते; प्रातः संध्या घूमते अथवा सोने की चेष्टा में बिस्तर पर करवटें बदलते बदलते मैंने अपनी अधिकांश कविताएँ लिखी हैं। अपनी एक प्रसिद्ध लम्बी कविता मैंने अटारी से प्रीति नगर तक, दस मील का लम्बा मार्ग, एक पुराने से इक्के पर पार करते हुए लिखी) किन्तु कहानी और इसी प्रकार नाटक मैंने प्रायः कमरे में मेज-कुर्सी पर बैठ कर लिखे हैं।

सुना है, स्व० प्रेमचन्द बिस्तर या फर्श पर पेट के बल लेट कर तकिये के सहारे लिखा करते थे और जब कभी लिखने में तल्लीन हो जाते थे तो घुटनों के बल पाँव ऊपर उठा लेते थे और (निमग्नता की न्यूनता अथवा आधिक्य के अनुसार) टाँगे हिलाते रहते थे। मैं कभी फ़र्श पर बैठ कर या लेट कर कोई चीज़ नहीं लिख पाया। मेज़ (चाहे फिर वह सेकेंड हैंड छोड़ थर्ड हैंड ही क्यों न हो) और कुर्सी (चाहे वह गद्देदार न होकर लकड़ी की कठोर खुर्री सीट वाली ही क्यों न हो) मेरे लिए सदा कलम-दवात की भाँति लिखने की आवश्यक सामग्री में से रही है।

निम्न-मध्य-वर्ग में जन्म लेकर, यथेष्ट अभाव में दिन गुज़ारने पर भी, यह साहबी स्वभाव मुझे कैसे पड़ गया, जब मैं इसका कारण खोजने के लिए अपने बचपन पर दृष्टि डालता हूँ तो अपनी समस्त दिलचस्पी के साथ एक घटना मेरे मस्तिष्क में विद्युत सी कौंद जाती है।

मैं पाँचवीं या छठी श्रेणी में पढता था जब हमारा पुराना खण्डहर सा मकान बनना आरम्भ हुआ। यद्यपि प्रारम्भिक योजना केवल इतनी थी

कि एक चौबारा और रसोई-घर गिरा कर नया बनवा लिया जाय, किन्तु हमारे पिता जी हर बात कुछ बड़े परिमाण पर करने में विश्वास रखते थे। उन्होंने सारे का सारा पुराना मकान गिरवा डाला और उसे फिर नये सिरे से दो-मंजिला बनवाने का निश्चय कर लिया और जहाँ माता जी ने पाँच सौ, हजार का अनुमान लगाया था, वहाँ नौ हज़ार रुपया खर्च कर डाला और बाद में वर्षों ऋण उतारते रहे।

उन्हीं दिनों जब मकान बन रहा था, पिता जी एक संध्या माता जी से पचास रुपये लेकर सीमेंट लेने बाजार गये। जब लौटे तो हमने देखा कि सीमेंट के बोरों के बदले उनके पीछे पीछे कुली दो मेज़ें, चार कुर्सियाँ और एक बेंच उठाये हुए चले आ रहे हैं। मेज़ें सुन्दर थीं, किन्तु उनका गहरा हरा, मूंग के रंग का कपड़ा बिलकुल उड़ गया था और वे उसके बिना सूनी सूनी लगती थीं। कुर्सियों में से एक बेंत-विहीन थी और दूसरी का बेंत इतना नीचा हो गया था कि सीट में गढ़ा बन गया था। रहा बेंच, तो वह भी जीर्णोद्धार की अपेक्षा रखता था। पूछने पर पता चला कि मार्ग में एक स्थान पर नीलामी हो रही थी, वे सीमेंट के बोरों के स्थान पर वह सब कचरा खरीद लाये हैं।

मैंने देखा सामान बाहर रखवा कर वे बड़े गर्व-स्फीत स्वर में अपनी इस कार्य-पटुता की प्रशंसा चाह रहे थे। मुरम्मत और पालिश के बाद वह सब सामान बैठक और आँगन में किस ढंग से सजाया जायगा, इसका सविस्तार ब्योरा दे रहे थे और भीतर आधे बने आँगन में माँ बैठी सोच रही थीं कि पचास रुपये तो ये कबाड़खाने में खर्च कर आये, अब सीमेंट के लिए रुपया कहाँ से आयगा?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि उस सामान की मुरम्मत हो जाती तो वह बुरा न लगता, किन्तु जब मकान ने एक कमरे और रसोई-घर से बढ़ कर आठ दस कमरों का रूप धारण कर लिया और घर घर का ऋण सिर पर चढ गया तो उन मेज़ों पर कपड़ा लगवाना तो दूर रहा, उन पर पालिश का एक हाथ भी न फिर सका। उन्हीं दो मेजों में से एक मेरे और मेरे छोटे भाई के अधिकार में आयी और एक दो वर्षों को छोड़ कर (जब छोटे भाई के नित नये झगड़ों से ऊब कर मैंने एक चौकी ही से मेज़ का काम

लिया) वह मेज मेरे अधिकार में रही और मैं मेज़-कुसी पर बैठ कर काम करने का कुछ ऐसा अभ्यस्त हुआ कि जब बी० ए० पास करने पर लाहौर गया और चालीस रुपया मासिक पर 'बन्दे मातरम्' के सम्पादक विभाग का सदस्य कहलाने का गौरव प्राप्त करने लगा, चगड़ मुहल्ले में दो अँधेरी सीलभरी कोठड़ियाँ भी मुझे किराये पर मिल गयीं और अवकाश के समय कुछ लिखने की समस्या समक्ष आयी तो उस मेज का वियोग बडा अखरने लगा। कोठड़ी के फ़र्श की दशा इस योग्य न थी कि उस पर बैठ कर या लेट कर कुछ लिखा जाये। इसलिए तुरन्त मेज़ लाने का निश्चय किया।

चालीस रुपया मासिक में से, घर का खर्च चला कर, इतने पैसे तो क्या बचते कि मैं नयी मेज़ खरीद सकता, किन्तु पहला वेतन मिलते ही जो पहला काम मैने किया, वह यह था कि पिता जी के पद-चिन्हों पर चलते हुए, अनारकली के एक सेकेंड-हैंड-डीलर से आबूनस की एक सेकेंड-हैंड मेज़-कुर्सी ख़रीद लाया। वह मेज़-कुर्सी इतनी सुन्दर थी कि उस सील भरी अँधकाराक्रान्त कोठडी में विलासिता (Luxury) से कम न लगती थी। उसी मेज़ पर मैं आठ वर्ष तक काम करता रहा और उसी पर बैठ कर मैंने अपने पहले नाटक भी लिखे।

ये पक्तियाँ लिखते समय कौन जाने, वह मेज़ पाकिस्तान के किसी कबाड़-ख़ाने में चली गयी है और पुनः नयी चमक-दमक के साथ मेरे जैसे किसी विपन्न महात्वाकांक्षी लेखक की बाट देख रही है, अथवा किसी कारोबारी के क्लर्क की फ़ाइलों का भार वहन कर रही है? भाई साहब अनारकली छोड़ते समय अपने और मेरे सब फ़र्नीचर को वहीं छोड़ आये थे। मुझे दूसरे फ़र्नीचर की कभी याद नहीं आयी, पर उस मेज़ की स्मृति बराबर आ जाती है।

किन्तु मेज़-कुर्सी अपनी समस्त सुख-सुविधा के बावजूद मुझे डेढ़ दो घंटे से अधिक बाँध कर नहीं बैठा सकी। जब मैं यह सुनता हूँ कि अमुक लेखक ने एक ही बैठक में पूरी की पूरी कहानी या अमुक ने नाटक समाप्त कर डाला तो मुझे उनसे ईर्षा भी होती है और उनकी इस प्रतिभा पर विस्मय भी—सोचता हूँ, या तो वे अपनी योग्यता दिखाने के लिए गप हाँक देते हैं या फिर प्रेस के तगादों के कारण जैसा-तैसा बन पड़ता है मन को

जकड़ कर लिख फेंकते है अथवा वे सचमुच अभूतपूर्व प्रतिभा के स्वामी हैं। एक ही बैठक में दो-चार बार तो अच्छी चीज़ लिखी जा सकती है, किन्तु सदैव कोई (अख़बारी नहीं, साहित्यिक) उत्तम रचना सृज देना मुझे असम्भव सा लगता है। मैं स्वय तो, दो चार अवसरों को छोड़ कर, एक ही बैठक में दस-बीस पक्तियो या दो-एक पृष्ठों से अधिक कभी नहीं लिख-पाया। यह बात नहीं कि प्लाट मेरे मस्तिष्क में नहीं होता, या अस्पष्ट होता है, या विचारों का क्रम टूट जाता है, या कोई उपमा नहीं सूझती, वरन् जब विचार प्रबल वेग से बह रहे होते हैं, उस समय भी कुछ ऐसी घबराहट होने लगती है कि मैं सहसा कलम छोड़ कर कमरे में टहलने लगता हूँ या बातें करने लगता हूँ या पढ़ने लगता हूँ। कई बार ऐसा भी हुआ कि नाटक लिखते लिखते मैं किसी दूसरे की कृति पढ़ने लगा और उसमें इतना तल्लीन हुआ कि मेरा नाटक अधूरा ही रह गया।

किन्तु विचित्र बात यह है कि इस प्रकार बहते हुए विचारों का क्रम तोड़ने पर भी कभी ऐसा नहीं हुआ कि मेरे विचार तितर-बितर हो गये हों और जब पुन: मैंने कलम उठायी हो तो उस क्रम को पकड़ न पाया होऊँ। सदैव ऐसा होता है कि जहाँ से मैं लिखना छोड़ता हूँ, फिर आकर जब बैठता हूँ, वहीं से प्रारम्भ कर देता हूँ। कई बार मैं वाक्य तक अधूरा छोड़ कर उठ जाता हूँ और जब दोबारा बैठता हूँ तभी वाक्य समाप्त करता हूँ। यही नहीं, कई बार जब वास्तव में विचारों का क्रम रुक जाने; कोई उपमा न सूझने; या किसी अस्पष्ट विचार के स्पष्ट न होने; अथवा कोई सम्भाषण न सूझ पाने के कारण लिखना छोड़ कर उठता हूँ तो (मैंने प्रायः देखा है) जब फिर बैठता हूँ, वह विचार, उपमा या सम्भाषण स्पष्ट होकर काग़ज पर आ जाता है। लगता है जैसे प्रकट दूसरी बातों में लगे रहने पर भी मस्तिष्क निरन्तर उसी सम्बन्ध में सोचता रहता है।

किन्तु इस प्रकार धीरे धीरे लिखने पर भी कभी यह नहीं हुआ कि नाटक की जो पाडुं-लिपि मैंने तैयार की वही अन्तिम हो। मेरा स्वभाव है कि पहली बार नाटक का धुँधला सा रेखा-चित्र तैयार कर लेता हूँ। (वास्तव में वह सब विकलता और घबराहट इसी पाडुं-लिपि की तैयारी में होती है) इसके पश्चात् मैं उसे निरन्तर सँवारता-सुधारता रहता हूँ।

इस काम में मेरा मन खूब लगता है। मै निरन्तर काट-छाट करता रहता हूँ और जब तक चीज़ प्रेस में नहीं चली जाती, मेरी सलग्नता में कमी नही आती। इस प्रकार कई नाटक मुझे दूसरी तीसरी से लेकर पॉचवीं छठी बार तक भी लिखने पडे हैं। पहला या दूसरा मसौदा तैयार करने पर मै मित्रो को (यदि अवसर मिले तो) सुनाता भी हूँ और उनका परामर्श भी लेता हूँ, किन्तु प्रायः ऐसा भी हुआ है कि मित्रों की तुष्टि हो जाने पर भी मै सन्तुष्ट नही हुआ और नाटक मे सशोधन-परिवर्द्धन करता रहा। ऐसे नाटकों की कमी नही जो रेडियो पर बड़ी सफलता से ब्राड-कास्ट हुए, किन्तु जब मैंने पुस्तक के लिए उनकी अन्तिम पाडुं-लिपि तैयार की तो उन्हे बिलकुल बदल दिया।

परन्तु मैं नाटक कैसे लिखता हूँ? इसके उत्तर में सम्भवतः इतना कह देना ही पर्याप्त नहीं कि मैं मेज़-कुर्सी पर बैठ कर, कागज़-कलम-दवात लेकर, दो या दस बैठकों में, दो या दस बार लिखता हूँ। यह शब्द 'कैसे' कदाचित् मुझ से नाटक के कला-पक्ष के सम्बन्ध में भी कुछ न कुछ कहने का अनुरोध करता है।

मैं सर्व-प्रथम नाटक की थीम अर्थात् आधारभूत विचार खोजता हूँ अथवा यों कहिए कि नाटक का आधारभूत विचार पहले मेरे मस्तिष्क में आता है। किन्तु कई बार ऐसा भी होता है कि इस आधारभूत विचार से पहले किसी मनोरंजक पात्र अथवा सुन्दर दृश्य को देख कर मेरे मन में उसे नाटक का अग बनाने की इच्छा उत्पन्न होती है और यही इच्छा नाटक लिखने को प्रेरित करती है।

"म्हारा जंगल का सब साज सदा रहती है दूब हरी"

चरवाहों के इस सरस, स्वतन्त्र गीत ने मुझे 'चरवाहे' लिखने पर विवश किया। मैं रेडियो स्टेशन दिल्ली के देहाती विभाग में बैठा हुआ था जब पंडित हृदयराम ने मुझे यह गीत अपने विशेष 'हरयाने' के स्वर में गाकर सुनाया। मुझ पर ऐसा प्रभाव हुआ कि इसी गीत को पृष्ठभूमि में रख कर मैंने 'चरवाहे' का सृजन किया।

वर्षा ऋतु में एक प्रातः मैं सब्जी मन्डी दिल्ली के समीप रिज पर सैर करने गया। बादल अभी अभी छटे थे, पर बड़ी नन्हीं नन्हीं फुहार पड रही थी। इस ठंडे, भीगे, प्रकाश-धुले धुधलके में मैं 'पीर ग़ायब' के मज़ार पर चढ़ा। नीचे वन के विटप जैसे अन्तर के उल्लास से झूम रहे थे और पहाड़ी पर ऊपर से नीचे को जाती हुई भीगी भीगी सड़कें प्रातः के उज्याले में चाँदी की नन्हीं नन्हीं नदियाँ लग रही थीं। तभी सहसा मेरे मन मे विचार उठा कि ऐसा भी व्यक्ति हो सकता है जो इतने सौन्दर्य के निकट होते हुए भी इसका दर्शन न कर पाये और विद्युत की सी गति से मेरे एक मित्र की लड़की की आकृति मेरी आँखो में कौंद गयी, जो छः वर्ष रीढ़ की हड्डी के नासूर से बिस्तर पर बँधी पड़ी रही थी। यही लड़की 'चिलमन' की किरण बनी और इस सौन्दर्य को एक नज़र देखने के लिए छटपटाती रही।

अभी हाल ही में एक नाटक का विचार मेरे मन ग़ालिब के प्रसिद्ध शेर—कैदे-हयातो-बन्दे ग़म ··· को पढ़ कर में उत्पन्न हुआ। मैं जब भी ग़ालिब का दीवान लेकर बैठता, प्रायः इस ग़ज़ल को पढ़ता। बार बार पढ़ने से यह शेर मेरे मन-मस्तिष्क पर अंकित हो गया और फिर इसी ने जीवन की एक पूरी ट्रेजेडी का रूप धारण कर लिया।

शेरों, गीतों और सुन्दर दृश्यों के अतिरिक्त कई बार मनोरंजक पात्र भी मुझे नाटक लिखने की प्रेरणा देते हैं। 'अंजो दीदी' आज भी मेरे सम्मुख है। 'छठा बेटा'—सौ पृष्ठ का यह नाटक मैंने एक पात्र ही को देख कर लिखा। इसी प्रकार 'भँवर' और 'चुम्बक' विभिन्न पात्रों के किसी न किसी नाटकीय पक्ष ही का चित्रांकन करते हैं।

विभिन्न वातावरण भी नाटक लिखने की प्रेरणा दे सकते हैं, और मेरा विचार कुछ ऐसे नाटक लिखने का भी है जो किसी पात्र के बदले पूरे के पूरे वातावरण का चित्र उपस्थित करें।

ऐसी दशाओं में जब आधारभूत विचार बना बनाया मस्तिष्क में नहीं आता और प्रेरणा किसी अन्य वस्तु से होती है, मैं सदैव मूलभूत विचार सोच निकालता हूँ। अब मैं इस पर नाटक की इमारत

कैसे खडी करता हूँ, इस विषय मे कोई घडी-घड़ायी विधि मै प्रस्तुत नही कर सकता। बचपन से मेरी प्रवृत्ति नाटको की ओर रही है; बचपन ही से मेने द्विजेन्द्रलाल राय, आगा हश्र, बेताब, राधेश्याम, रहमत आदि के नाटक पढ़े है; कालेज और कालेज के पश्चात् अनेक नाटको मे अभिनय किया है और बाद मे, जब मै पुस्तकें खरीद सका, मैने लगभग सभी प्रसिद्ध पश्चिमीय और पूर्वीय नाटककारों की रचनाएँ पढी है; नाटक के आवश्यक उपादानों का परिचय पाया है, पुरातन और आधुनिक ढग के नाटकों का अन्तर जाना है और अभ्यास से ड्रामे की कला पर अधिकार प्राप्त कर लिया है। जब मैंने एफ़० ए० मे एक बार एकांकी लिखने का प्रयास किया तो उस समय भारतवर्ष में एकाकी लगभग अप्राप्य था। कवि टैगोर के एक दो नाटक मेरे सम्मुख थे और पडित सुदर्शन की एक कामेडी— 'आनरेरी मैजिस्ट्रेट'। किन्तु उस समय मुझे नाटक के, विशेषकर आधुनिक नाटक के, आवश्यक अवयवों का ज्ञान न था; इसलिए चेष्टा करने पर भी मै सफल नाटक न लिख पाया। कुछ हास्यास्पद नामों के साथ एक हास्यास्पद सी वस्तुस्थिति पर मैंने एक प्रहसन लिखा, किन्तु उस समय भी मुझे सन्तोष न हुआ और बाद मे कई बार लिखे जाने पर भी वह इस योग्य न बन सका कि किसी संग्रह का अंग बने।

१९३६ में मेरी पहली पत्नी का देहान्त हो गया और इस अवसर पर कुछ कुप्रथाओं का मेरे मन पर इतना प्रभाव हुआ कि एक दिन जब मैंने समय काटने के लिए, अपने छोटे भाई के कोर्स की एकांकी नाटकों की पुस्तक उठायी तो पहला नाटक पढ़ते ही एक घटना एकाकी का रूप धार कर मेरे समक्ष आ गयी और मैंने दो दिन में 'लक्ष्मी का स्वागत' लिख डाला। कला की दृष्टि से यह आज भी मेरे श्रेष्ठ एकांकी नाटकों में से है। उन्हीं दिनो मैंने पुरातन ढग का एक लम्बा ऐतिहासिक नाटक 'जय पराजय' लिखा जो बाद में कई विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में सम्मिलित हुआ। इसके पश्चात् ज्यों ज्यों मैं आधुनिक नाटक पढ़ता गया, मेरे मन में आधुनिक ढंग के अपेक्षाकृत छोटे नाटक लिखने की इच्छा प्रबलतर होती गयी। कुछ इसलिए भी कि आजकल जन-साधारण के पास बडे बड़े नाटक देखने या पढने का समय नहीं और कुछ इसलिए कि ये छोटे नाटक अधिक स्वाभाविक लगते हैं और वास्तविकता का भ्रम (*Illusion of Reality*) उत्पन्न कर देते हैं। फिर कहानीकार होने के कारण मुझे छोटे नाटक पसन्द थे। एक

कारण यह भी था कि मैं स्वयं उन दिनों कहीं नौकर न था; और स्वतन्त्र रूप से काम करता था, मेरा सारा दिन मेरा अपना था और दिन भर केवल कहानियाँ सोचना और लिखना मेरे लिए असम्भव था। मन चाहता था कि जब कहानी लिखने की रुचि न हो तो कोई और चीज़ लिखी जाय। मेरे मस्तिष्क में कुछ ऐसी घटनाएं सुरक्षित थीं जो कहानी के बदले नाटक के रूप में अपेक्षाकृत अच्छे ढग पर उपस्थित की जा सकती थीं, ऐसे अवसरो पर मै नाटक लिखने का प्रयास करता रहा।

उस समय से लेकर अब तक मैंने—सामाजिक, राजनीतिक, सांकेतिक, मनोवैज्ञानिक—सभी प्रकार के नाटक लिखे और पढे हैं। पश्चिम के प्रसिद्ध नाटककारों में मुझे इबसन, मैतरलिक, स्ट्रिंडबर्ग, चेखोव, सिमोनोव, ओ-नील, कॉफ़मैन, मॉहम, बेरी, प्रीस्टले ने सदा नाटक लिखने की प्रेरणा दी है। मैंने शा, गाल्ज़वर्दी, पिरेन्देलो, और दूसरे अमरीकी, जापानी और योरुपीय नाटककारों को भी पढ़ा है। मैं उन कलाकारों की महत्ता को मानता हूँ, किन्तु इनमें से अधिकांश को पढकर, चाहे मुझे कितना भी आनन्द क्यों न मिला हो, न जाने क्यों, स्वयं कोई नाटक लिखने की प्रेरणा नहीं हुई। सम्भवतः इसलिए कि शायद मेरी प्रकृति उनसे भिन्न है। मैतरलिकया ओ-नील का नाटक मैं चाहे दूसरी या तीसरी बार ही क्यों न पढ़ूँ, सदैव मुझे नाटक लिखने के लिए प्रेरित करता है और उसे पढ़ कर मेरे मस्तिष्क में नाटक के जो आधारभूत विचार पक रहे होते हैं, उनमें से कोई न कोई अस्पष्ट विचार सर्वथा स्पष्ट होकर नाटक का रूप धारण कर लेता है।—यहाँ प्रगतिशीलता अथवा प्रतिक्रियात्मकता का ज़िक्र नहीं। मैं मात्र कला-पक्ष की बात कर रहा हूँ। नाटककार अथवा नाटक चाहे अगतिमूलक हो, पर कई बार उसकी कला का सौष्ठव मुझे मोह लेता है और स्वयं लिखने की प्रेरणा देता है।

मैंने जीवन की विभिन्नता का आभास पाया है और थोड़ा-बहुत अनुभव भी प्राप्त किया है। समाचार-पत्र के एक साधारण रिपोर्टर के रूप में जीवन-संघर्ष आरम्भ करके मैंने अध्यापक, अनुवादक, सम्पादक, वक्ता,

विज्ञापन-विशेषज्ञ, वकील, रेडियो-आर्टिस्ट, अभिनेता और सिनारिस्ट की हेसियत से भाँति-भाँति के अनुभव प्राप्त किए हैं; भाँति-भाँति के लोगों से मिला हूँ और असख्य सुखद अथवा दुखद घटनाएँ मेरे मस्तिष्क में सुरक्षित पड़ी है। जब भी अपने प्रिय नाटककारो को पढ़ते पढ़ते (कई बार नये पास न होने के कारण पुराने ही पढता हूँ) मुझे नाटक लिखने की प्रेरणा होती है तो उनमे से कई घटनाएँ, कई पात्र और कई दृश्य आप से आप मेरे आधारभूत विचारों में से किसी एक मे फ़िट हो जाते हैं और नाटक तैयार हो जाता है। कोई भी पात्र, चाहे वह कितना भी मनोरजक क्यों न हो, शायद ही कभी अपने यथार्थ रूप में नाटकका अंग बनता है। आधारभूत विचार की आवश्यकता के अनुसार उस पर रंग चढ़ जाता है।

कई बार वास्तव जीवन के कई पात्र मिल कर नाटक के एक पात्र में समा जाते हैं और यह सम्मिलन एक नये पात्र का सृजन कर देता है। भिन्न रसायनक द्रव्यों के समावेश से जो नया द्रव्य बनता है, जिस प्रकार उसमें उन सब के गुण-दोषों के साथ साथ अपने स्वतन्त्र गुण-दोष भी होते हैं, उसी प्रकार यह नया पात्र भी उन पात्रों के चरित्रों का सार तो अपने में रखता ही है, परन्तु इसका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी होता है। 'भँवर' की 'प्रतिभा' इस समावेश का प्रमाण है।

जब मैं दिल्ली में था तो मैने तीन लड़कियों को देखा। उनमें दो हिन्दू थीं और एक मुसलमान, परन्तु उनके जीवन की उलझन और व्यग्रता मुझे बड़ी हद तक एक सी लगी। कई बातें उनमें समान रूप से विद्यमान थीं। उदाहरणतः

१. तीनों अभिजात वर्ग से सम्बन्ध रखती थी।

२. तीनों बड़ी पढ़ी लिखी थीं—एक इंग्लिस्तान हो आयी थी, दूसरी एम० ए० में फ़र्स्ट रही थी, तीसरी उस समय एम० ए० में पढ़ रही थी। तीनों अपने को प्रबल बुद्धिवादी (*Intellectual*) मानती थीं।

३. तीनों ने अपने यौवनारम्भ में किसी ऐसे व्यक्ति से प्यार किया था जिसे वे भिन्न कारणों से अपना जीवन-साथी न बना पायी थीं।

४. उस पहले प्यार के पश्चात् जब तीनों ने विवाह किया तो अपने वैवाहिक जीवन को सफल न बना सकीं। वे अपने पतियों को छोड़ बैठी थीं अथवा वे उनसे अलग हो गये थे।

५. तीनों को उनकी इस वैवाहिक असफलता ने एक विचित्र आकर्षण प्रदान कर दिया था। भव के विशाल वक्ष पर वे मुक्त लहरियों सी बह रही थीं। नयी लहरियों से मिलती थीं, कुछ पल साथ साथ चलती थीं, फिर असन्तुष्ट होकर अलग हो जाती थीं। गालिब के उस पथिक की भाँति जिसके मुँह से कवि ने कहलाया है :—

चलता हूँ थोड़ी दूर हर इक राहरौ के साथ
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबर को मैं!

६. यद्यपि उनके इस विचित्र आकर्षण की आभा में कई शलभ अपने प्राण गँवा रहे थे, परन्तु वे स्वयं भी अपने ही आप जलने वाली दीपशिखा की भाँति निरन्तर सुलग रही थीं।

इन तीनों पात्रों के समावेश ने 'भँवर' की 'प्रतिभा' का रूप धार लिया। प्रतिभा में उनके चरित्रों के सार स्वरूप ये बातें तो आप पायँगे ही, परन्तु इसके साथ ही उसका अपना अलग व्यक्तित्व भी—जो भँवर के चक्कर में घूमने वाली एक ऊर्मि का सा है—विज्ञ पाठकों को अवश्य मिलेगा।

कई बार आधारभूत विचार कहीं से मिलता है और पात्र कहीं से और दोनों एक दूसरे में समा जाते हैं।

सात आठ वर्ष की बात है। एक दिन प्रातः मैं प्रीत नगर से लाहौर

को जा रहा था। प्रीत नगर से अटारी के अड्डे तक दस मील का मार्ग इक्के पर ते करना पडता है। लोपोके से इक्के की पिछली सीट पर दो वृद्ध मुसलमान स्त्रियाँ आ सवार हुई। एक बुढ़िया अपने बडे लडके के यहाँ किसी उत्सव पर लोपोके आयी थी और उस समय वापस अपने छोटे लड़के के पास जा रही थी जहाँ कि उन दिनो वह रहती थी। अपनी बडी बहू के दुर्व्यवहार से तग आकर, वह उत्सव को बीच ही मे छोड, लड-लडा कर चली आयी थी। दस मील की यात्रा का एक-तिहाई भाग उसने अपने बडे लडके और बहू को गालियाँ देने में गुज़ारा—सास होने के नाते अपने बेटे और बहू से उसकी वही शिकायतें थी जो पुरातन काल से कर्कषा और ईर्षालु सासो को होती आयी हैं—फिर जब उसके मन का उबाल कुछ शान्त हुआ तो उसने अपने दुख की कहानी कहनी आरम्भ की—किस प्रकार पति के मर जाने पर उसने स्वयं मेहनत-मजूरी करके अपने तीनों बच्चों को पाला……
किस प्रकार बडा बेटा उस 'कमीनी' बडी बहू के आते ही अलग हो गया……
किस प्रकार उसने अपनी आशाएँ मँझले पर केन्द्रित की किन्तु उस बड़े को देख कर वह भी विवाह के पश्चात अलग हो गया……। तब बुढिया कई मील तक मँझले लडके और उसकी बहू को गालियाँ देती रही। अन्त में उसने अपने छोटे लड़के का ज़िक्र आरम्भ किया कि वह कितना सुशील, समझदार और आज्ञाकारी है। खुदा के बाद यदि वह किसी पर यकीन रखता है तो वह उसकी यही बुढ़िया माँ है। अपने छोटे लड़के के गुणों का बखान करते करते वृद्धा की वाणी की कर्कषता एक विचित्र आर्द्र-तरल-स्निग्धता में परिणत हो गयी। अपनी मैली ओढ़नी से अपनी नाक साफ़ करते हुए अन्त में उसने सजल वाणी में कहा कि बस वह तो खुदा से दिन-रात यही दुआ करती है कि उसके बच्चे का घर बस जाय तो उसके मन को भी सुख-शान्ति मिले।

उसकी इस आकांक्षा को सुन कर मन ही मन मैं हँस दिया। सुख-शान्ति की वह उसकी हसरत ऐसी थी जिसका पूरा होना उस परिस्थिति में असम्भव सा था। निश्चय ही वह तीसरे बेटे का विवाह करेगी—मैंने सोचा—उसी अरमान और चाव से जिसके साथ उसने पहले दो पुत्रों का विवाह रचाया था, परन्तु उसका वह तीसरा पुत्र अपने भाइयों के पद-चिन्हों पर न चलेगा, इसकी कोई सम्भावना न थी, क्योंकि उस बुढ़िया के रहते किसी का उस घर में रहना उतना की असम्भव था जितना किसी

बहू के रहते उसका रहना। उसकी वह आकांक्षा मुझे मानव की उस छली आकांक्षा का प्रतीक लगी जो कभी पूरी नहीं होती।

उस यात्रा के बाद, इक्के का वह सफ़र, वह बुढ़िया, उसकी बातें, उसकी वह कभी न पूरी होने वाली आकांक्षा मेरे मन मस्तिष्क में घूमती रही। मेरा विचार उस पर कहानी लिखने का था, परन्तु फिर अपने ही आस-पास मुझे कुछ ऐसे पात्र मिल गये जिनकी आकांक्षा भी उस वृद्धा की भाँति कभी पूरी न होने वाली थी, तब मैंने उस मूलभूत विचार में ये नये पात्र फ़िट कर दिये और 'छठा बेटा' तैयार हो गया। पण्डित बसन्तलाल और उस कर्कशा वृद्धा में यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो बहुत अन्तर न दिखायी देगा।

छठा बेटा माँ की (पंडित बसन्तलाल और उस कर्कशा वृद्धा की भी) उस आकांक्षा ही का प्रतीक है जो कभी पूरी नहीं होती।

पात्रों और आधारभूत विचार के अतिरिक्त कई बार भिन्न भिन्न स्थानों पर देखे हुए दृश्यों अथवा घटनाओं का भी समावेश एक ही नाटक में हो जाता है। वास्तव में नाटक लिखने की क्रिया भिन्न रसायनक द्रव्यों के समावेश से नया द्रव्य तैयार करने ऐसी ही है। कहाँ कहाँ से क्या मिलाकर एक नयी कृति तैयार हो जाती है, इसका ब्योरा ठीक से देना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। कई बार किसी पात्र के कृत्य का कारण ढूंढने और पाने के प्रयास में उसका प्रकट रूप ही बदल जाता है और वह अपने आन्तरिक रूप में, अथवा उस रूप में कि जिसमें मैं उसे देखता हूँ, नाटक का पात्र बन जाता है।

मुझे किसी प्रसिद्ध नाटक का अनुवाद करने, विचार चुराने अथवा उसकी शैली का अनुकरण करने की कभी इच्छा नहीं हुई। उन बड़े नाटककारों की नकल करना या उनके कोषों से विचारों के मोती चुराना मैं उनकी और अपनी

प्रतिभा का अपमान समझता हूँ और जैसा कि स्ट्रिंडबर्ग ने एक स्थल पर लिखा है :—

Pushed ahead by the impression made on me by Materlink and borrowing his divining rod, I turned to my own sources.

(मैतरलिंक ने मुझ पर जो प्रभाव डाला उससे प्रेरणा प्राप्त कर और उस महान कलाकार से दृष्टि की गहराई उधार लेकर मैं अपनी ही अनुभूतियों की ओर झुका ।)

मैं भी उन महान नाटककारों से प्रभावित होकर, अपनी ही अनुभूतियों से नाटक की सामग्री प्राप्त करता हूँ और 'आप-बीती' अथवा 'जग-बीती' को नाटकों का रूप देता रहता हूँ ।❋

पचगनी
१९ जून १९४८

उपेन्द्रनाथ अश्क

❋इस लेख का कुछ भाग आल इंडिया रेडियो लखनऊ से ब्राडकास्ट हो चुका है। स्टेशन डारेक्टर आल इंडिया रेडियो लखनऊ के सौजन्य से, यथेष्ट परिवर्धन के बाद, इस संग्रह में सम्मिलित किया जाता है।

पात्र

तारा चन्द

शिव राम

बृज नाथ

सरदारी लाल

बृन्दावन, पूरण, सन्तू, रानी, राजी।

[पर्दा पंडित ताराचंद की बैठक में खुलता है। यह बैठक नये और पुराने का अद्भुत मिलान उपस्थित करती है, क्योंकि इस में कौंच भी लगे है, तिपाइयाँ भी रखी है और एक तख्त पर गाव-तकिया भी लगा है।

बायीं दीवार में एक बडी खिड़की है, तख्त इसी के बराबर बिछा है। खिड़की पर पर्दा लटक रहा है, शायद पूरा नहीं खींचा गया, क्योंकि खिड़की का आधा भाग दिखायी दे रहा है, जिसके शीशों में से बाहर बग़ीचे के पेड़-पौधे दिखायी देते हैं।

दायीं दीवार में भी एक वैसी ही खिड़की है, जिसके अधखुले पर्दे से चबूतरा और उसके परे बग़ीचा दिखायी देता है। खिड़की के इधर को एक दरवाज़ा है जो बाहर चबूतरे पर खुलता है। बाग़ से होकर बैठक में आने का यही दरवाज़ा है।

सामने की दीवार के दायें कोने में एक दरवाज़ा है जो आँगन में खुलता है। दरवाज़े पर पर्दा लटक रहा है, किन्तु पर्दे के हटने पर आँगन और आँगन के परे बरामदे का एक भाग, पानी का नल और हौज़ साफ़ दिखायी देते हैं।

सामने दीवार के साथ कौच का सेट, तख्त से आँगन के दरवाज़े तक, इस ढग से लगा है कि बायीं ओर के कौच पर बैठा हुआ व्यक्ति तख्त पर बैठे हुए आदमी से बडी सुगमता से बातचीत कर सकता है।

दीवारों पर अवतारों के चित्र भी लगे हैं और महात्मा गाँधी तथा पंडित जवाहर लाल के भी, परन्तु उनमें मार्क्स और लैनिन के चित्र न जाने किसने लगा दिये है। सम्भवत पंडित जी के लड़के पूरण ने लगाये है और पंडित जी को कदाचित उसने यह कह दिया है कि ये भी अवतारों ही के चित्र हैं।

सुबह का समय है। खिड़की के शीशों से हलकी-हलकी धूप कमरे में आ रही है। पर्दा उठने पर पंडित ताराचंद हुक्का पीते दिखायी देते हैं और शिवराम तख्त के बराबर ही कौच पर

आगे को झुके हुए बैठ रहे हैं। लगता है जैसे अभी आये हैं, क्योंकि टोपी अभी तक उनके हाथ में है, जिसे वे पर्दा उठते समय तख्त पर रखते दिखायी देते हैं।

क्षण भर के लिए ताराचंद हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, फिर रानी को आवाज़ देते हैं।]

ताराचंद : *रानी बेटा मैंने पानी लाने को कहा था।*

रानी : (आँगन में) *ला रही हूँ, पिता जी।*

शिवराम : *अरे भई, कोई ऐसी जल्दी नहीं। इतनी दूर से पैदल ही चला आया, इसलिए कुछ प्यास सी लग रही थी, पर ऐसी भी क्या मुसीबत है कि... ...*

(रानी आँगन के दरवाज़े से पानी लिये प्रवेश करती है)

रानी : *लीजिए चचा जी!*

शिवराम : (गिलास लेते हुए) *जीती रहो बेटा!*

[दो एक घूँट पीकर गिलास तिपाई पर रख देते हैं। रानी गिलास उठाने लगती है।]

नहीं, अभी गिलास ले जाने की ज़रूरत नहीं। मैं अभी और पीऊँगा। धीरे-धीरे पानी पीने का स्वभाव है मेरा।

ताराचंद : (हुक्का गुड़गुड़ाते हुए) *सन्तू को भेज देना गिलास लेने। कहाँ है सन्तू?*

रानी : *जी, सब्ज़ी-तरकारी लेने गया है मारकेट तक।*

ताराचंद : *जब आये, भेज देना।*

रानी : *जी, बहुत अच्छा।*

(चली जाती है)

शिवराम : *क्यों भई, रानी के विषय में क्या निश्चय किया है तुमने? बेचारी आधी भी नहीं रही!*

ताराचंद : *रानो ही के दुख की दवा कर रहा हूँ शिवराम। अपनी ओर से मैं इस बात का पूरा पूरा ध्यान रखता हूँ कि उसे*

किसी प्रकार का कष्ट न हो (हुक्का गुडगुडाते है) उसने दोबारा कालिज में दाख़िल होना चाहा और यद्यपि लड़कियों की शिक्षा को मै अधिक पसन्द नहीं करता, लेकिन पूरण के ज़ोर देने पर मैंने इसका प्रबन्ध कर दिया। उसने गाना सीखना चाहा और यद्यपि मैं नाच-गाने को, जैसा कि तुम जानते हो, डोम मीरासियों की चीज़ समझता हूँ पर पूरण के कहने पर, और इस बात का विचार करके कि रानी को अपना दुख हर समय खलेगा, मैंने सूरदास हरिराम को उसे गाना सिखाने के लिए लगा दिया (हुक्के का लम्बा कश लगा कर तनिक भेदभरे स्वर में) यही नहीं, मैंने अभी त्रिलोक का भी पीछा नहीं छोड़ा। वृन्दाबन को उसके पीछे लगा रखा है और वह उसे मनाने की पूरी चेष्टा कर रहा है (फिर हुक्का गुडगुडाते और खाँसते हैं) मैं जानता हूँ अपनी सारी शिक्षा, कला और अपने समस्त गुणों के होते भी रानी विरह के इस लम्बे दुख को सहन न कर सकेगी।

शिवराम : धन चोरी हो जाय या खो जाय ताराचंद, मनुष्य संतोष से बैठ जाता है, किन्तु पास होते हुए भी, अपना होते हुए भी, उसे हाथ लगाने की आज्ञा न हो इस बात से जो कष्ट होता है, उसे मन ही जानता है।

ताराचद : ईश्वर तुम्हारा भला करे! (हुक्के का लम्बा कश लगा कर) इसीलिए मैं इस जतन में हूँ कि त्रिलोक आकर उसे ले जाय।

शिवराम : क्या कहता है वह ?

ताराचद : अभी तक तो अपने हठ पर अड़ा है। वास्तव में बात यह है शिवराम कि इस विवाह से उसे बहुत आशाएँ थीं और जब उसने देखा कि उसकी आशाएँ उसकी कल्पना के अनुसार पूरी नहीं हुईं तो उसने इस बात का समस्त क्रोध बेचारी रानी पर निकाला।

शिवराम : आशाएँ ?

ताराचंद : उसे आशा थी कि दहेज़ में एक मकान और मोटर

अवश्य मिलेगी, किन्तु मकान छोड़ जब उसे मोटर भी न मिली......

[पूरण बाहर चबूतरे पर दिखायी देता है। क्षण भर के लिए खिड़की में से भीतर झाँकता है, फिर ड्राइंग रूम की ओर आता है।]

शिवराम : *उसे मकान और मोटर की क्या आवश्यकता है? उसके पिता के अपने मकान है और मोटर भी है।*

ताराचंद : (हँस कर) *किन्तु त्रिलोक के अतिरिक्त उसके पिता के पाँच और भी तो पुत्र हैं। बांटने पर शायद किसी मकान की बैठक और मोटर का कोई पुर्ज़ा ही उसके हाथ लगे।*

[पूरण कमरे में आता है किन्तु दोनों को बातों में निमग्न देखकर पल भर के लिए चौखट में खड़ा सुनता है।]

शिवराम : *क्या कहते हो? उनके तो इतने मकान हैं!*

ताराचंद : *सब गिरवी रखे हुए हैं। हमें तो पता ही न चला, नहीं मैं कभी रानो का विवाह वहाँ न करता।*

पूरण : (हँसता है) *इस बात का पता चल जाता तो कोई और बात पर्दे में रह जाती। विवाह तो आज-कल अँधेरे में तीर मारने के समान है। निशाने पर लग गया तो लग गया, नहीं हाथ से निकला तीर तो वापस आता नहीं। जब दोनों पक्ष झूठ बोलने में एक दूसरे से बाजी ले जाने की चिन्ता में हों तो सच का पता पाना कठिन है।*

ताराचंद : (हुक्का गुड़गुड़ाना छोड़ कर तीक्ष्ण कटु स्वर में) *कहाँ से आये हो पूरण आवारागर्दी करते?*

पूरण : *आवारा-गर्दी में ठौर-ठिकाना कहाँ? सभी जगह घूमता आया हूँ।*

ताराचंद : *तुम्हें कभी तमीज़ से बात करनी भी आयेगी?* (शिवराम से) *और शिवराम, तुम कहा करते थे—बच्चों को जितना हो सके पढ़ाना चाहिए। ये महाशय एम० ए०*

है और सुनता हूँ कि अपनी श्रेणी मे प्रथम रहे थे। पूछो क्या करते है ? (मुँह बना कर) आवारागर्दी।

पूरण : तो आखिर आप ही कहिए क्या करूँ ?

ताराचद . (गर्ज कर) मै कहूँ ! मेरे कहने से क्या होता है ? (शिवराम से) मै इसके लिए कितने मित्रो के सामने बुरा नहीं बना शिवराम ! राय साहब ग़नीमत राय की सिफ़ारिश से बड़े दफ्तर मे नोकर कराया (नकल उतारते हुये) "मुझे यह क्लर्की पसन्द नहीं है।" बुरा-सा मुँह बना कर ये महाशय वहाँ त्यागपत्र दे आये। लाला गुलज़ारी लाल की मिन्नतें करके उनकी फर्म मे नौकर कराया, चार दिन बाद वहाँ से छोड़ आये। पूछा—'क्यों' ? उत्तर मिला—"दिन भर झूठ बोलना पडता है।" कोई पूछे, सत्यवादी हरिश्चन्द्र के अवतार तो बस तुम्ही हो, शेष सारी दुनिया झूठ बोलती है। सर सीताराम की मिल में मैनेजर की नौकरी दिलायी, सप्ताह भर से अधिक वहाँ न टिके। पूछा—'क्यों' ? पता चला—'मजदूरों पर अत्याचार इनसे सहन नही होता।' (फिर पूरण से) अब बताओ, तुम्हें और क्या करने को कहूँ ? सुबह कहाँ जाने को कहा था, कुछ याद है ?

पूरण : मैं उनसे बात करना भी अपना अपमान समझता हूँ।

ताराचंद . लाट है न भारत का तू (मुँह चिढाते हुए) बात करना भी अपमान समझता हूँ। बहिन का सारा जीवन संकट में है और ये महाशय उसके पति से बात तक करना अपमान समझते हैं।

पूरण मैं जानता हूँ, उनके साथ बहिन का जीवन.. ......

ताराचद : (और भी गर्ज कर) चुप रहो और अपनी यह फ़िलासफ़ी अपने पास रखो। बहुत सुन चुका हूँ।

रानी : (आँगन से) पूरण भय्या, तनिक इधर आना, यह ट्रंक ज़रा नीचे उतरवाना।

पूरण . आया रानो।

(चला जाता है)

ताराचद . ज़रूरत से .ज्यादा शिक्षा ने लडके का दिमाग़ खराब कर दिया है (हुक्का गुड़गुड़ाते है) मुझे कभी-कभी आशंका होती है कि यह अपने साथ रानो को भी न ले डूबे। स्त्री का स्थान उसके पति का घर है शिवराम, माता पिता के पास लड़की कितने दिन रह सकती है ?

शिवराम : बडे बडे राजा महराजा लड़कियों को अपने घर नही रख सकते ताराचंद, फिर हमारी-तुम्हारी तो बात ही क्या है !

ताराचद : ईश्वर तुम्हारा भला करे ! (हुक्के का कश लगा कर) तुम्ही कहो रानी अपने घर न जायगी तो क्या आयु भर यहाँ बैठी रहेगी ? मै उसे जो शिक्षा दिला रहा हूँ सो उसका कारण यही है कि त्रिलोक को उससे जो शिकायत है, वह दूर हो जाय, नहीं उसे नौकरी तो करनी नहीं।

शिवराम : भले घरों की बहू-बेटियाँ कही नौकरी करती हैं !

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारा भला करे ! यह साला जो आज भाई बना फिरता है, कल यदि मेरी आँख बन्द हो जाय तो बात भी न पूछेगा। देखो शिवराम, इन लोगों के किये तो कुछ होगा नही। ये सब नादान छोकरे हैं। इन्हें यह समझ नहीं कि कौन सी बात करने की है और कौन सी नहीं। तुम्हें इतने सवेरे कष्ट देने का उद्देश्य यह भी था कि तुम स्वयं त्रिलोक से मिलो और किसी न किसी तरह रानी को बुलाने के लिए उसे तैयार कर लो। देखो, त्रिलोक के पिता से तुम्हारी अच्छी मित्रता रही है। उस पर भी दबाव डालो। यदि वह मेरा मकान ही लेना चाहता है तो मैं अपना पुराना मकान उस के नाम कर दूँगा। आख़िर जमाई और बेटे में भेद ही क्या है ? रानी अपने घर सुखी रहे, मैं और मकान बनवा लूँगा।

शिवराम : परन्तु रानी से उसे शिकायत क्या है ?

ताराचद : दसियो शिकायतें है—वह सुशिक्षित नही, सुसंस्कृत नही, सुन्दर नही, विनम्र नही, मुँह-फट है, सास ससुर का आदर नही करती ..

शिवराम : तुमने रानी को समझाया नही ?

ताराचंद : अरे भाई, जब वह पिछले वर्ष रोती हुई आयी, तो मैंने समझाबुझा कर उसे वापस भेज दिया था। परन्तु वास्तव मे इसके अतिरिक्त रानी का कोई दोष नही कि वह त्रिलोक की आशा के अनुसार दहेज़ मे एक मोटर और मकान नही ले गयी ?

शिवराम : तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ ? हुई थी तुम्हारे सामने इस बात की चर्चा ?

ताराचंद : (हुक्का गुड़गुड़ा कर) अरे यह तो बुझ गया (नौकर को आवाज देते है) सन्तू, ओ सन्तू !

रानी : (आँगन से) क्या बात है पिता जी ?

ताराचंद : यह चिल्म बुझ गयी। उससे कहना ज़रा भर कर दे जाय।

रानी : वह तो अभी आया नहीं पिता जी, मैं आती हूँ।

(रानी आती है और चिलम ले जाती है)

ताराचंद : (रानी से) जरा तमाखू दबा कर भरना। पूरण क्या कर रहा है ?

रानी : (जाते जाते) बाहर चले गये हैं बाग़ीचे में।

ताराचद : (खाली हुक्का गुड़गुड़ाते हुए) त्रिलोक ने मुझ से तो कभी कुछ नहीं कहा। मेरे सामने तो झिझकते झिझकते उसने इन्हीं बातो का ज़िक्र किया था, किन्तु रानी ने, ससुराल में अपने प्रारम्भिक जीवन के सबन्ध में, जो कुछ बताया, उसी से मुझे ज्ञात हो गया कि वास्तव में दुखती रग कौन सी है। शुरू शुरू में त्रिलोक ने रानी को उसके पिता की कजूसी के लिए कोसा और कहा कि उसे धोखा दिया गया है। उसे आशा दिलायी गयी थी कि एक मोटर और मकान दहेज़ में दिया जायगा।

शिवराम : *हुई थी ऐसी बात ?*

ताराचंद . *कभी नही। मैं और परमानन्द त्रिलोक को देखने गये थे। इस बात का ज़िक्र तक नहीं हुआ। उस समय तो न इतनी पढी-लिखी की जरूरत थी, न सुन्दर की। मेरे सामने त्रिलोक ने साफ़ साफ़ कहा कि मै बहुत पढ़ी-लिखी लड़की पसन्द नहीं करता। बस भले घर की ऐसी सरल और सुशील लड़की चाहिए, जो मुझे घर का आराम दे सके। जब मैं शाम को कचहरी से थका-हारा आऊँ तो मुझे लगे कि मैं घर आ गया हूँ। मुझे ऐसी पत्नी नहीं चाहिए जो घर ही को कचहरी बना रखे— और मैंने उसे विश्वास दिलाया था कि वह रानी में ये सब गुण पायगा। अब परमानन्द ने उसे अपनी ओर से उसे कोई सब्ज़ बाग़ दिखाये हों तो मुझे खबर नहीं।*

(रानी चिल्म लिए ती)

रानी : *यह लीजिए चिल्म पिता जी, उपले की आग रख कर लायी हूँ।*

ताराचंद : (हुक्का गुड़गुड़ा कर) *जीती रहो बेटी!* (शिवराम से) *लो शिवराम, पियो।*

[रानी चली जाती है और शिवराम बेपरवाही से हुक्के के दो कश लगा कर ताराचद की ओर कर देता है]

शिवराम : *लेकिन तुम्हारी इच्छा के बिना परमानन्द ने ऐसा क्यों किया होगा!*

ताराचद : *कभी मेरा विचार था मोटर और मकान देने का, किन्तु भाई मुझे राजी का भी तो विवाह करना था। यदि रानी को मकान देता तो राजी को भी देता और फिर जब त्रिलोक और उसके पिता ने कहा कि हमें दहेज़ की बिलकुल परवाह नहीं, ईश्वर का दिया हमारे पास बहुत कुछ है, हमें तो बस सरल और सुशील लड़की चाहिए। तो मैंने अपना विचार बदल दिया। और फिर पूरण*

का भी खयाल था। लाख आवारा हो, फिर भी मेरा लडका है।

शिवराम . हाँ, हाँ, पूरण के लिए कुछ भी न छोडना परले सिरे का अन्याय होता। पढ़ा-लिखा बे-ऐब लडका है, जिस दिन भी टिक कर बैठ गया, तुमसे दुगुना कमा लेगा।

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारे भला करे! (चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाते हैं) मुझे क्या पता था कि त्रिलोक और उसके पिता ने जो कुछ कहा, वह सब ऊपर की बातें थीं। उनकी आँखें तो मोटर और मकान पर लगी थी। ज्यों ही रानी घर गयी, उसे सुनना पड़ा कि वह एक कजूस बाप की बेटी है, उसकी सास ने, उसके ससुर ने, उसकी जेठानियों और ननदों ने उसे दहेज़ की कमी के ताने दिये, त्रिलोक ने कई बार उन लड़कियों की चर्चा की जिनके पिता उसे कहीं अधिक दहेज़ देने को तैयार थे, या जो अधिक शिक्षित, अधिक सुसस्कृत या.........

(अचानक काल-बेल बजती है)

—: (अपनी बात जारी रखते हुए) अधिक सुन्दर, सुशील या विनम्र थीं।

(काल-बेल फिर बजती है)

—: (उच्च स्वर में) अरे सन्तू, देख कौन है, बैठाना बाहर बरामदे में! (शिवराम से) वह कुछ भी कहती या करती, उसे किसी न किसी लडकी या उसके सम्बन्धियों की बात सुननी पडती। यहाँ तक कि उसे इतना तग किया गया कि वह यहाँ आ गयी। तब मैने उसे समझा-बुझा कर भेज दिया। समझाया कि बेटी, पति जिस हाल में रखे, उसी में रहना चाहिए और ससुराल के दोष गिनने के बदले गुण ढूँढने चाहिएँ। और मैं जानता हूँ, रानो ने अपनी ओर से किसी तरह की शिकायत का अवसर नहीं दिया, मुझे क्या मालूम था कि ब्राह्मणों के भेस में ये लोग भेडिये है! परन्तु शिवराम, जो भी हो, लड़की का स्थान तो उसकी ससुराल ही है।

तुम जरा प्रयास कर देखो। मुझे मकान या मोटर की चिन्ता नहीं। रानो के सुख के लिए मै इनका प्रबन्ध कर दूँगा।

पूरण : (बागीचे की ओर से आता हुआ) पिता जी, राय सरदारीलाल आये हैं।

ताराचद : (घबरा कर उठते हुए) तो उन्हें ले आये होते।

पूरण : जी उन्होने कहा—मै यही बरामदे में बैठा हूँ, धूप बडी प्यारी लग रही है।

शिवराम : अच्छा भाई, तो मैं चला। त्रिलोक से आज ही मिलूँगा।

ताराचद : अरे भई चलो ज़रा धूप में बैठते हैं।

(शिवराम को साथ लिये चलते हैं।)

— : (जाते जाते पूरण से) सन्तू आये तो हुक्का बाहर भिजवा देना पूरण।

पूरण : जी बहुत अच्छा।

[चले जाते है रानी तेज तेज आती है और भाई के गले लग जाती है।]

रानी : (रुँधे हुए गले से) पूरण !

पूरण : (उसकी पीठ को थपथपाते हुए) क्यों रानो, क्या बात है ?

रानी : पिता जी, मुझे फिर वहाँ भेजने की चेष्टा कर रहे हैं। तुम्हीं कहो—मैं क्या करूँगी वहाँ जाकर ? क्या इस प्रकार उनके लोभ का पेट भरने से मेरा घरेलू जीवन सुखी हो सकेगा ?

पूरण : तुम चिन्ता न करो रानो, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई तुम्हें वहाँ नहीं भेज सकता।

रानी : (रुँधे हुए गले से) पूरण, भैया !

पूरण : (उसकी पीठ थपथपाते हुए) मैं कहता हूँ तुम ज़रा भी न घबराओ।

रानी : पिता जी दूसरों से कुछ नहीं कहते, किन्तु अपने मन में वे

भी मुझे कम दोषी नहीं समझते (अचानक पूरण की आँखों में देखते हुये) एक बात पूछूँ ?

पूरण : कहो !

रानी : तुम भी तो दिल में कहीं मुझे ही दोषी नहीं समझते ?

पूरण : दोषी ! कभी नहीं ! मुझे तो इस बात का गर्व है कि तुमने अपने स्वाभिमान की रक्षा की ।

रानी : मैं उस दम घोटने वाले वातावरण में किस तरह रह सकती थी ? मुझे पिता जी का डर न होता तो मैं कभी की आ जाती । मुझे भय था, वे मुझे फिर उसी नरक में जाने को कहेंगे । पहली बार जब मैं आयी थी तो जानते हो, उन्होंने कितना शोर मचाया था । उस समय मेरा विचार था, वे लोग अपनी ग़लती मान जायँगे, इसलिए मैंने पिता जी से सब बातें न कहीं थी, किन्तु इस बार सब कुछ बता देने पर भी वे मुझे उसी नरक में भेजने का यत्न कर रहें हैं ।

पूरण : तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो । पिता जी पति को पत्नी का परमेश्वर समझते हों तो समझें, मै ऐसा नहीं समझता । मेरे समीप पति पत्नी का परमात्मा नहीं, उसका साथी है और उस साथ को निबाहने का सारा उत्तर-दायित्व पत्नी ही पर नहीं, पति पर भी है ।

[पडित ताराचद और राय सरदारीलाल बातें करते हुए प्रवेश करते हैं]

ताराचद अजीब मौसम है यह भी सरदारी लाल, धूप में बैठो तो गर्मी लगती है और छाया में बैठो तो ठडक (हँसते हैं) अभी दो मिनट पहले धूप कितनी प्यारी लग रही थी, किन्तु इतने ही में सिर चकराने लगा (पूरण से) ज़रा सन्तू को भेजो पूरण, हुक्का ताजा कर जाय । और देखो बाहर कोई तुम से मिलने आया है ।

पूरण : जी !

(जाता है । रानी भी जाने लगती है ।)

ताराचंद : रानो बेटा, तुम्हारे चाचा आये हैं ।

रानी (मुड कर) चाचा जी प्रणाम !

सरदारीलाल : (बैठते हुए) जीती रहो बेटी ! सोहागवती बनो और अपने घर सुखी रहो !

(रानी लजाती हुई चली जाती है)

ताराचंद : (बैठते हुए) तुमने देखा सरदारीलाल, रानो कितनी दुबली हो गयी है। पहले से आधी भी नही रही। तुम एक बार प्रयास तो कर देखो। मै कहता हूँ यह जब तक यहाँ है, मैं कोई काम नहीं कर सकता।

सरदारीलाल : मैंने तुम से कह दिया, मैं पूरा जतन करूँगा।

(सन्तू आता है और हुक्का उठा कर ले जाता है।

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारा भला करे ! रानी जैसी मेरी बेटी है सरदारी लाल, वैसी ही तुम्हारी है। मैं तो सच, पछता रहा हूँ वहाँ इसका विवाह करके, पर जो हो चुका, हो चुका। मैं नहीं चाहता कि बात अब और बढ़े। किसी ने कहा है—आँख ओझल, पहाड़ ओझल—दूर रहे तो दूर हो जायँगे। मैं जानता हूँ, त्रिलोक रानी को पसन्द करता है। विवाह से पहले उसने उसे देख भी लिया था। उसे जिस बात की शिकायत है वह मैं दूर कर दूँगा। मेरी बस यही इच्छा है कि वह उसे आदर-सम्मान से रखे।

(राज उदास उदास आती है)

राज : (अपनी उदासी को छिपाते और हँसने की चेष्टा करते हुए) पिता जी प्रणाम ! चाचा जी प्रणाम !

ताराचद : अरे राजी ! (उठ कर प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए) कहो बेटी, प्रसन्न तो हो ?

सरदारीलाल : अच्छा भाई, मैं अब चलता हूँ।

ताराचंद : अरे भाई ठहरो। मैं भी चलता हूँ तुम्हारे साथ ! कम से कम दरवाज़े तक तो पहुँचा आऊँ।

सरदारीलाल : (उठते हैं) यह शिष्टाचार रहने दो।

ताराचंद : तुमने राजी के प्रणाम का उत्तर ही नही दिया सरदारी लाल !

सरदारी लाल : (मुड कर) जीती रहो, जीती रहो बेटी ?

ताराचंद : (उठते हुए और राजी के कन्धे पर हाथ रखे उसे भी साथ साथ ले जाते हुए) राजी !

राज : जी पिता जी !

ताराचंद : यह तुम इतनी दुबली क्यों हो गयी हो ?

राज : (दुख को दबाते और मुस्कराने की चेष्टा करते हुए) जी नहीं, मै तो पहले से मोटी हो गयी हूँ ।

ताराचद : (चलते चलते क्षण भर रुक गए) तुम्हारा सामान कहाँ है ?

राज ट्रङ्क है, सो बाहर बरामदे में पडा है ।

ताराचंद : मदन नही आया ?

राज . नहीं, मैं अपने देवर के साथ आयी हूँ ।

ताराचद : तो कहाँ है वह, साथ क्यों नहीं लायी ?

राज : जी उसे जल्दी थी । मुझे यहाँ छोड़ कर स्कूल चला गया है । जीजी कहाँ है ?

ताराचद : यहीं थी, शायद उधर आँगन में हो !

राज . और भैय्या ?

ताराचंद : वह भी उधर बागीचे में होगा (उसकी पीठ को थपथपाते हुए) और तो सब प्रसन्न हैं, तुम्हारे सास ससुर……

राज : (चलते चलते शरमा कर) जी !

ताराचंद : (उसे छोड कर सरदारी लाल के कन्धे पर हाथ रख कर चलते हुए) बडे भले लोग है सरदारीलाल । सीधे-साधे, भोले-भाले आदमी है राजी के ससुर—नेक ख़याल और धर्म-परायण ! घमंड तो उन्हें छू तक नहीं गया । जब मैं पहले-पहल राजी के लिए उनसे मिला तो कहने लगे (रुक कर) हमें लेन-देन में विश्वास नहीं पडित जी । हम तो आप को चाहते हैं । आप हमारे हो गये तो और क्या चाहिए (फिर चल पडते हैं) मैं तो ऐसे ही लोगों को पसन्द करता

हूँ। और भाई मैने निश्चय कर लिया है कि त्रिलोक के नाम हो या न हो, किन्तु मदन के नाम एक मकान अवश्य कर दूँगा। लडका तो बेचारा गाय है।

(चबूतरे के दरवाजे से निकल जाते हैं)

राज : (अपने पिता की अन्तिम बात सुन कर रुकती है, मुड कर जाते हुए अपने पिता को देखती है। ओठों पर तिक्त व्यगमयी मुस्कान फैल जाती है) बेचारा गाय !

[धम्म से वहीं आँगन के दरवाजे के पास कौच में धँस जाती है। सन्तू हुक्का ताजा करके लाता है]

सन्तू : अरे राज है ! कहो बेटी कब आयी ?

राज : अभी आ रही हूँ सन्तू।

(बाग के दरवाजे से पूरण भागा आता है)

पूरण : हैलो राजी !

राज : भैय्या······

(पूरण के गले मे लिपट जाती है।)

पूरण : पास से निकल गयी और मुझे देखा तक नहीं (जब उसके मुँह को देखता है तो चौंकता है) अरे तुम तो पीली हो गयी हो। हल्दी खाती रही हो या (हँस कर) जीजा जी ने······

राज . (पीडा-मिश्रित-क्रोध से) भैय्या !

पूरण : अच्छा, अच्छा भई, (पीठ थपथपाता है) नाराज़ क्यों होती हो जीजा जी का नाम सुन कर ! हमारी लाल गोरी बहिन को लेके हल्दी सी पीली कर दिया और हम इतना भी न कहें कि ·····

राज . भैय्या ! तुम कभी न मानोगे !

पूरण अच्छा भाई, बिगड़ती क्यों हो ? (रानो को आवाज देता है) रानी, देखो राजी आयी है (सन्तू से, जो हुक्का रख कर जा रहा है) सन्तू, जरा रानो को भेज और राज का ट्रंक उठा

को भेज और राज का ट्रंक उठा कर भीतर रख, बाहर बरामदे में पड़ा है ।

सन्तू : (जाते जाते) जी बहुत अच्छा !

(आँगन के दरवाज़े से रानी भागी आती है)

रानी : (राज से गले मिलते हुए) अरे तू इधर बैठक मे क्या गोबर-गणेश बनी बैठी है, उधर क्यों नहीं चली आयी ?

राज : पिता जी और चाचा सरदारी लाल बैठे थे इसलिए ।

(काल-बेल बज उठती है)

पूरण : (असतोष से) यह इतवार का दिन तो एक मुसीबत बन गया है। सुबह से जो यह जो काल-बेल बजनी शुरू होती है तो............

[काल-बेल फिर बजती है और पूरण 'जी आया' कहता हुआ भाग जाता है ।]

राज : (रानी के गले से चिमटती हुई रु धे हुए गले से) जीजी !

[रानी उसकी पीठ थपथपाती है। राज धीरे धीरे रोने लगती है ।]

रानी : अरे !......बात क्या है ?......राजो !......क्यों ?

राज : (और भी चिमटते हुए) जीजी !

(और भी ज़ोर से सिसकने लगती है)

रानी : क्यों राजो क्या बात है ?

राज : (आँसू पोंछते हुए तनिक सम्हल कर) बात क्या होगी, योंही तुम्हें देखकर मन भर आया। कहो त्रिलोक जीजा जी आये ?

रानी : (व्यग्य से हँस कर) आ गये ! तुम अपनी कहो, तुम्हें क्या दुख है ?

राज : नहीं जीजी, मै हर तरह से सुखी हूँ ।

रानी : (तनिक हँस कर) सुख की कोई झलक तो तुम्हारे मुख पर

दिखायी नही देती। देखो राजो, मुझ से न छिपाओ, मै सब भुगत चुकी हूँ।

राज : कुछ भी तो नहीं जीजी!

रानी : क्या तुम यह सब मेरी ओर देख कर कह सकती हो?

राज : (मुस्कराने की चेष्टा करते हुए) क्यों?

रानी : मुस्कान में पीडा को छिपाने की चेष्टा न करो राजो, तुम्हारी आँखें तो डबडबा रही है।

राज : (भरे हुए गले से) जीजी!

(सहसा रानी के गले से चिमट जाती है।)

रानी : (उसकी पीठ थपथपाते हुए, दीर्घ निश्वास भर कर) ससार भर में ब्याह स्त्री के लिए सुख शान्ति का सन्देश लाता है, किन्तु हमारी गुलामी के बन्धन इसके बाद और भी सुदृढ़ हो जाते हैं (राज सिसकती है) बस बस, दुख को दिल मे न छिपाओ बहिन, घाव कर देता है, और कुछ समय बाद वही घाव नासूर बन जाता हे। क्या सास तंग करती है?

राज : नहीं, वे बेचारी तो कभी कुछ नहीं कहतीं।

रानी : ससुर?

राज : वे तो देवता हैं!

रानी : ननदें?

राज : वे न होतीं ती अब तक मै शायद खत्म हो चुकी होती।

रानी : तो फिर.... .तो फिर..... तुम्हारे...... .

(राज बहिन के गले से चिमट कर सिसकने लगती है।)

—: परन्तु प्रोफ़ेसर मदन तो पढे-लिखे आदमी हैं। क्या बात है, कह डालो।

(राज चुपचाप सिसके जाती है)

रानी मुझसे न कहोगी तो और किससे कहोगी..... (राज सिसके

जाती है). कुछ कहो भी। प्रोफ़ेसर साहब तो बडे हँस-मुख और रसीले आदमी है।

(उसे फिर कौच पर बैठा देती हैं।)

राज : (आँसू पोंछते हुए, धीरे धीरे) सुनती हूँ बडे हँस मुख थे। ठहाके मारते थे तो मकान गूँज उठता था, किन्तु मैने उनका ठहाका कभी नही सुना। मुस्कराते है, किन्तु उस मुस्कान में उल्लास का तो कही ढूँढ़ने पर भी पता नही चलता।

रानी : लेकिन वे तो......विवाह में तो......

राज : एक दिन मैने पूछा—'सुनती हूँ आप खूब हँसते थे, ठहाके मारते थे, मैने तो एक भी नही सुना!'—तब ठहाका मार कर हँस दिये—ख़ाली, खोखला, नीरस ठहाका!

रानी : (समझने की चेष्टा करतो हुई) हूँ!

(स्वयं भी कौच के बाजू पर बैठ जाती है।)

राज : यदि कहीं हँस भी रहे होते और मै चली जाती तो उनकी हँसी तत्काल बन्द हो जाती। काले काले से मेघ उनके मुख पर घिर आते। फिर यदि वे मुस्कराते भी तो उनकी मुस्कान कहीं योजनों दूर से आने वाली अपरिचित परदेशिनी सी दिखायी देती।

रानी : उन्होने तुम्हें पसन्द नहीं किया।

राज : सुनती हूँ किसी बहुत पढी-लिखी लड़की से विवाह करना चाहते थे, किन्तु एक तो उस लड़की के माता पिता न थे, दूसरे वह ब्राह्मण न थी, इसलिए इनके माता पिता तैयार न हुए। इन्होंने बहुतेरा समझाया, किन्तु माँ ने उन सब कष्टों का वास्ता दिलाया जो इन्हें पाल-पोस कर बड़ा करने में उसने सहे थे और पिता ने उन मनीआर्डरों की रसीदों का ढेर उनके सामने लगा दिया जो उनकी शिक्षा के निमित्त वे प्रति मास भेजते रहे थे। बारह हज़ार की रसीदें थीं और वे चाहते थे कि उनका लड़का उनकी इच्छानुसार विवाह करे।

रानी : और लोग माता पिता के स्नेह के गीत गाते हैं।
[उठकर कमरे का एक चक्कर लगाती है
और फिर उसके पास आकर बैठ जाती है।]
तो उन्होंने तुम्हे पसन्द नही किया।

राज : मै क्या जानूँ जीजी? ऐसा लगता है जैसे वे उस लडकी को भुला नहीं सके।

रानी : तुम उनका मन बहलाने की चेष्टा करतीं।

राज : मैंने लाख चेष्टा की, पर असफल रही उनके पास जाती तो ऐसे बैठे रहते जैसे मुझ से कोसों दूर हों। बातें करते तो मालूम होता, जैसे मुझ से नही, शून्य से बातें कर रहे हैं। लेटते तो लगता जैसे बर्फ़ के पानी में नहा कर लेटे हैं।

रानी : (केवल दीर्घ निश्वास लेती है) हूँ......हूँ......

(उठकर कमरे में घूमने लगती है)

राज : हाँ, जब मैं रोती तो मुझे बाहों में भर कर प्यार करने लगते। कहते—तुम अभागी हो राज, मैं भी आभगा हूँ और दर्शनों भी।

रानी : दर्शनों कौन ?

राज : वही लड़की जिससे वे शादी करना चाहते थे। पूरा नाम सुदर्शन है। एम० ए० है, उसने अभी उनका पीछा नहीं छोड़ा।

रानी : अजीब बेशरम लडकी है !

राज : कभी जब मैं कहती—आप जिसे चाहें शौक से प्यार करें पर मुझे भी न ठुकराएँ, तो मुझे बाहों में भीच लेते, किन्तु स्पष्ट अनुभव होता जैसे मन से नहीं केवल मेरे रोने से विवश होकर प्यार करते हैं। और कभी इस तरह प्यार करते करते अपने बाल नोचने लगते। कहते—मैं कायर हूँ, कायर ! मातापिता के भय से मैंने अपना और तुम्हारा जीवन नष्ट कर दिया। और फिर रोने लगते, उस समय जीजी, न जाने मेरे जी को क्या होने लगता,

मै उन्हे बाहों में भर लेती, किन्तु मेरे स्पर्श मे जैसे सहस्रो बिच्छुओ के डक हो, वे हडबडा कर उठ बैठते। मुझे परे हटा देते। पागलो की भॉति चिल्ला उठते—तुम मुझसे क्यों चिमटती हो राज ? तुम्हे मुझको छोड कर चले जाना चाहिए, तुम्हें मेरा कोई काम न करना चाहिए। (दीर्घ निश्वास लेती है) किन्तु जीजी, न जाने क्यो, जितना वे मुझसे भागने की चेष्टा करते, उतना ही है मै उनके समीप रहना चाहती।

रानी : (थकी सी आकर उसके पास कौच पर बैठ जाती है) तो अब वे तुम्हारे पास नहीं आते।

राज : नही एक सप्ताह पहले तक निरन्तर आते थे, किन्तु जब भी आते ऐसा लगता जैसे बॅधे-बॅधे आये है ....

रानी : (सिर्फ लम्बी सास लेती है) हूँ · ···

राज : (अपनी बात जारी रखते हुए) एक दिन कहते थे—क्यों न हम अभी कुछ देर दो मित्रों की भाँति रहें ! धीरे-धीरे हम एक दूसरे को समझ जायँगे। एक दूसरे के गुणों को पहचान लेंगे। फिर हम पति-पत्नी की भाँति रहेंगे—पति-पत्नी की भाँति ऐसा जीवन बितायॅगे जिसका हर नया दिन थकन और उकताहट लाने के बदले स्नेह और उल्लास लायगा।

रानी : तुम ऐसा ही कर लेतीं।

राज : मैने चेष्टा की, किन्तु तब सास जी ने कहा—तुम तो पगली हो ! वह तुमसे दूर रहना चाहता है। उस पर उस चुडैल ने जादू कर रखा है, उसका मन उड़ता रहता है, बॉध कर न रखोगी तो उड़ जायगा और उड़ा हुआ पछी फिर हाथ नहीं आता। मैने उन्ही का कहा माना। जैसे वे कहती रही मैं करती रही किन्तु इस प्रयास में जो थोड़ा-बहुत बन्धन था, वह भी टूट गया।

[रानी कुछ कहना चाहती है, किन्तु नहीं कहती। क्षण भर दोनों चुप रहतो हैं। राज उठकर धीरे-धीरे कमरे में घूमने लगती है।]

—: ज्यों ज्यों मै उनके समीप जाने की चेष्टा करती, वे मुझसे दूर भागते। दोपहर को उन्होंने घर आना छोड दिया। लंच कालेज ही मँगा लेते। शाम को भी देर से आते। धीरे-धीरे यह देर बढती गयी। बहुत रात गये घर आते और चुपचाप बिस्तर पर लेट जाते। मैं चाहती उनके पाँव दबा दूँ, उनके सुख दुख की बात पूछूँ, किन्तु मेरी तो शक्ल ही से जैसे उन्हे भय आता—'मुझे मत छेडो, मुझे सोने दो!' यही कहते। मै चुपचाप रोने लगती तो लपक कर उठ बैठते और घंटों आँगन में चक्कर लगा कर गुज़ार देते। कभी चिढ कर कहते—'तुम जाने किस मिट्टी की बनी हुई हो। तुम्हे स्वाभिमान छू भी नही गया। मै तुमसे इतनी घृणा करता हूँ और तुम मेरे पाँव दबाना चाहती हो'

(हताश सी तख्त पर बैठ जाती है)

रानी : (उठ खड़ी होती है) मैं हैरान हूँ, तुमने इतनी देर यह सब कैसे सहन किया! मैं तो बहुत पहले छोड़ कर चली आती।

राज : न जाने क्यों, उनकी समस्त घृणा के होते भी मुझे कभी उन पर क्रोध नहीं आया जीजी! वे जब भी मुझसे घृणा करने की चेष्टा करते, मेरे मन में सदैव दया का भाव उत्पन्न हो जाता। मैं उनके और भी समीप जाना चाहती, किन्तु जितना मै उनके निकट जाती, उतना ही वे दूर खिचते।

(गला रुँध जाता है और आँखों से आँसू बहने लगते हैं।)

रानी : (उसके पास बैठते हुए, उसके कन्धे पर प्यार का हाथ फेरते हुए) राजी!

राज : (रुँधे हुए गले से) निरन्तर रोते जागते मेरी यह दशा हो गयी (सिसकी रोक कर) घर वालों से आँख मिलाते मुझे लज्जा आने लगी। ऐसा अनुभव होने लगा मानो सब

मुझे दया की दृष्टि से देखते है, जैसे उनकी यह दया धीरे धीरे घृणा मे परिणत हो रही है।

रानी : मै कहती हूँ तुम पहले ही क्यो न चली आयी ?

राज : आशा का एक अज्ञात सा तार जो बँधा हुआ था जीजी !

[कुछ देर चुप रहती है। रानी पूर्ववत् शून्य में देखती घूमे जाती है। दाँत उसके भिचे हुए है और ज्ञात होता है, जैसे उसके मन में क्रोध का एक दुर्निवार बवडर उठ रहा है]

— परसो पता चला कि अब होस्टल ही मे रहेंगे। सुपरिन्टेन्डेन्ट हो गये हैं। बस वह तार भी टूट गया। मैंने पत्र लिखकर उन्हे दो तीन मिनट के लिए बुलवाया और कहा—मेरा मन यहाँ नही लगता, मुझे मैके भिजवा दो ! कहने लगे—हाँ, तुम कुछ दिनो के लिए मैके हो आओ ! और चुपचाप उन्होंने मेरी सब चीजें ट्रंक में भर दी, एक छल्ला तक सास के पास न रहने दिया। और छोटे भाई से कहा कि वह मुझे छोड़ आये। उसके बाद जैसे आये थे, वेसे चले गये। न उन्हो ने मुझसे कुछ कहा और न मै ही उनसे कुछ पूछ सकी।

रानी : सास ने रोका नहीं ?

राज : उन्होने बहुतेरा कहा। उनकी ओर देखती तो वहाँ से हिलने को जी न चाहता। मै तो उनकी सेवा में जीवन भर पड़ी रहती, किन्तु वहाँ एक वही तो नहीं, दूसरे भी है और उन सब की दृष्टि का सामना करना मेरे बस की बात नही।

(बृजनाथ और ताराचद बातें करते हुए आते है)

ताराचंद : तुम अवश्य चेष्टा कर देखो बृजनाथ। तुम उसके पिता के घनिष्ट मित्र हो। तुम्हारा वह बड़ा आदर करता है, तुम्हारी हर बात मानता है। रानो तुम्हारी भी तो बेटी है।

रानी : चलो आँगन मे चलकर बैठें।

[दोनों चली जाती है। ताराचद आकर तख्त पर बैठते हैं और बृजनाथ कौच पर]

ताराचद : (हुक्का गुड़गुड़ा कर) *यह चिल्म तो बुझ गयी। सन्तू, ओ सन्तू !*

सन्तू : (आँगन से) *जी सरकार !*

(भागा आता है)

ताराचद . *यह हुक्का ताज़ा नही किया तू ने ? चिल्म तो बिल्कुल ठंडी पड़ी है !*

सन्तू : *मै तो ताज़ा करके रख गया था। सरकार ही चले गये थे। अभी लाता हूँ।*

(चिल्म लेकर चला जाता है)

ताराचंद : (खाली हुक्का गुड़गुड़ाते हुए) *जब तुम्हे सब बातो का पता है बृजनाथ तो फिर प्रयास क्यों नही कर देखते। मैने बृन्दाबन से कह रखा है, शिवराम, सरदारीलाल और दूसरे मित्रों से भी कह रखा है,* (भेद भरे स्वर में) *मै स्वयं उससे यह बात नही कर सकता। उसे जो शिकायत है, उसे दूर करने को मैं तैयार हूँ, किन्तु यदि मै स्वयं उससे पूछूँगा तो वह इस शिकायत के अस्तित्व ही से इनकार कर देगा। रानो को फिर से बसाने के लिए तुम युक्तियाँ तो दूसरी देना, किन्तु चतुराई से इस बात की ओर भी संकेत कर देना कि यदि वे दोनों अलग रहेंगे तो मैं अपना एक मकान उनके नाम कर दूँगा और कुछ समय बाद मोटर भी ले दूँगा।*

बृजनाथ : *हूँ।*

ताराचंद : (खाली हुक्के का कश लगा कर और खाँस कर) *और मुझे पूरा विश्वास है कि यदि तुम समझदारी से काम लोगे तो यह बिगडी हुई बात बन जायगी* (और भी भेद भरे स्वर में) *और फिर कचहरी में तुम्हारा जो प्रभाव है, उसको भी तुम काम में ला सकते हो। धमकी देना ही काफ़ी होगा।*

रानो का जीवन सँवर जाएगा और मै आयु भर तुम्हारा आभार मानूँगा।

[सन्तू चिल्म लाकर हुक्के पर रखता है। ताराचंद हुक्के के लम्बे लम्बे कश खींचते हैं]

बृजनाथ : मै पूरी पूरी चेष्टा करूँगा, पर तुम्हे विश्वास है कि और कोई बात नहीं है ?

ताराचद : यों तो बीसियों हैं, परन्तु उन सब की तह में यही लोभ काम करता है। वह मानेगा नहीं, पर यदि तुम ज़रा चतुराई से काम लोगे तो वह राह पर आ जायगा।

बृजनाथ : मैं आज ही उससे मिलूँगा।

तराचंद : मुझे रानो के विवाह में बडा कटु अनुभव हुआ बृजनाथ। अच्छे अच्छे योग्य और बुद्धिमान लड़के मेरी आँखों के सामने आये, किन्तु मै इसी हठ पर अड़ा रहा कि लडकी अपने से बड़े परिवार में जाय। मै क्या जानता था, बाहर से बडे दिखायी देने वाले भीतर से खोखले होते हैं।

बृजनाथ : मै तो सदा ही से इस बात के पक्ष में हूँ कि परिवार की अपेक्षा लड़का देखा जाय ?

ताराचंद : (एक लम्बा कश लगा कर) राजी के लिए मैने लड़का ही देखा है। मदन के पिता अत्यन्त निर्धन थे। अपनी आधी पेन्शन पेशगी लेकर उन्होंने मदन को शिक्षा दिलायी और उनका सारा परिश्रम और त्याग सफल हुआ। एम० ए० करते ही उसे कालेज में नौकरी मिल गई। अब वह पी० एच० डी० की तैयारी कर रहा है। इतना समझदार, हँसमुख और भला लड़का है कि पल भर जो उससे बातें करता है, उसके गुण गाने लगता है।

बृजनाथ : मुझे यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि राज इतने अच्छे घर ब्याही गयी।

ताराचंद : मदन तो गाय है गाय! राज तो वहाँ सचमुच राज करेगी!!

[प्रसन्नता से हुक्का गुडगुडाने लगते है। शिवराम घबराया हुआ प्रवेश करता है।]

शिवराम : *ताराचद, तुमने सुना, तुम्हारा जमाई दूसरा विवाह कर रहा है।*

[हुक्के की नली ताराचद के हाथ से छूट जाती है और वे उठने का प्रयास करते है]

ताराचद : (आधे बैठे, आधे उठे हुए) *कौन? त्रिलोक!*

शिवराम : *नहीं, मदन!*

[ताराचद फिर धम्म से तख्त पर बैठ जाते है। आँगन से किसी के गिरने और रानी के चीखने की आवाज आती है।]

रानी : *पिता जी . पिता जी........*

ताराचंद : *मैं कहता हूँ तुम बैठ क्या गये हो ताराचंद, यदि कुछ करना चाहते हो तो अभी कार लेकर चलो। खाईवालो की धर्मशाला में हो रही है शादी। मुझे तो विष्णु पंडित से पता चला। उसका वह सिर फिरा लड़का गया है ब्याह पढाने।*

ताराचंद : (तत्काल उठकर) *सन्तू......सन्तू!*

(सन्तू भागा आता है।)

रानी : (आँगन से) *पिता जी......पिता जी............*

ताराचंद : *कार ले जाओ और फ़ैक्टरी से बिजली, पहलवान और कुछ दूसरे मज़दूरों को लेकर खाईवालों की धर्मशाला में पहुँचो। मै तुम्हारी कार में चलता हूँ शिवराम।*

शिवराम : *मै तो पैदल ही भागा आया हूँ।*

बृजनाथ : *चलिए, मैं आपको अपनी कार में ले चलता हूँ।*

ताराचंद : *क्या यह शादी मदन के पिता की इच्छा . .. ...*

शिवराम : *चलो, चलो, मै सब बताता हूँ।*

(सब जल्दी जल्दी निकल जाते है)

रानी . (आँगन से) *पिता जी..... पिता जी....... सन्तू . ... पूरण. !*

(वाटिका की ओर से पूरण भागा आता है ।)

पूरण *क्या बात है ? क्या बात है ?*

(भीतर भाग जाता है ।)

रानी : (आँगन से) *राजी बेसुध हो गयी है । देखो तो इसके दाँत पच्ची हो गये है ।*

[दूसरे क्षण पूरण और रानी अचेत राजी को उठाये हुए आते है ।]

पूरण : *क्या बात हुई ?*

रानी : *बस खड़े खडे गिर पड़ी ।*

(उसे तख्त पर लिटा देते है ।)

पूरण : *घबराओ मत, लपक कर थोड़ा सा पानी ले आओ ।*

(रानी जाती है ।)

—: *एक चमचा भी लेती आना,* (राज को हिलाते हुए) *राजी..... राजी........*

(राज बेसुध है)

— : *राजी. ...राजी.. ....*

[उठकर बिजली का पखा चला देता है । रानी पानी लाती है ।]

रानी : *अरे, तुमने पखा छोड दिया ! यहाँ तो पहले ही ठंड है ।*

पूरण : *तुम चिन्ता न करो । पानी लाओ, इसके मुँह पर छींटे दूँ ।*

[रानी पानी देती है । पूरण राज के मुख पर छींटे मारता है]

—: *राजी . ...राजी... ....*

(राज पूर्ववत बिसुध है ।)

—: (फिर छींटे मारता है) *राजी. ....राजी.........*

(राज हिलती नहीं, बिसुध पडी रहती है ।)

पूरण : *ज़रा चमच दो ।*

रानी : *मै भूल गयी, अभी लायी ।*

(भाग जाती है ।)

पूरण : (उसके बालों पर हाथ फेरते हुए) *राज......राजी... ..और कहती थी मै बड़ी प्रसन्न हूँ ससुराल में,*

(रानी चमच ले आती है ।)

रानी : *यह लो चमच ।*

पूरण : *तुम ज़रा इसकी नाक उँगलियों से दबाओ । मैं पानी का चमच मुँह में डालता हूँ ।*

(रानी राज की नाक दबाती है ।

—: (चमच भर कर मुँह में डालते हुए) *यह हिस्टीरिया का दौरा है या कुछ और । पहले तो कभी इसे मूर्च्छा न आयी थी ।*

रानी : *दाँत पच्ची हैं, पानी तो बह गया सारा ।*

पूरण : *तुम चिन्ता न करो, नाक दबाये रखो ।*

[रानी बहिन की नाक दबाये रखती है । साँस के रुक जाने से राज के दाँत खुल जाते है । पूरण पानी का चमच मुँह में डालता है । कुछ क्षण बाद राज तेज-तेज साम लेती है । वह दूसरा चमच मुँह में डालता है । अचेतावस्था में गरगराहट के साथ राज पानी पी जाती है ।]

—: (प्यार से) *राजी......राजी.........*

रानी : (प्यार मे) *राजो......राजो.........*

[राज पूरी तरह तो होश मे नहीं आती, किन्तु पहले उसका एक हाथ हिलता है फिर उसकी आँखें खुल जाती है ।]

पूरण : (प्यार से) राजो, क्या बात थी ? चक्कर आ गया था ?

[राज उठना चाहती है । पूरण बाँह के सहारे से उसे उठाकर बैठा देता है ।]

— : कामरेड बिहारी आ गये, मै उनके साथ बातों में उलझ गया । बात क्या है ? इतनी दुबली हो रही हो तुम । कभी शीशे में अपना मुँह नहीं देखा ? खाने को नहीं देते रहे जीजा जी तुम्हें ?

रानी : तुम्हारे जीजा जी दूसरी शादी कर रहे हैं ।

पूरण : क्या . .....कौन ?

रानी : मदन !

पूरण : मदन !

[चौंक कर उठ खड़ा होता है, सहारा हट जाने से राज फिर लेट जाती है ।]

रानी : अभी चचा शिवराम ने बताया । लाईवालों की धर्मशाला में हो रही है शादी । पिता जी, चचा शिवराम और बृजनाथ के साथ वहीं गये हैं ।

(पूरण कौच में धँस जाता है ।)

पूरण : (थके और उदास स्वर में) मैने पहले ही कहा था । उड़ती उडती ख़बर सुनी थी कि प्रोफेसर मदन दूसरी जगह शादी करना चाहते है ।

रानी : एम० ए० पास लडकी है, जिसके न माता है न पिता ।

पूरण : शादी के लिए न माता की आवश्यकता है न पिता की ।

रानी : जाति से भी वह क्षत्री है ।

पूरण : जाति का भी ब्याह से कोई सम्बन्ध नहीं । इसके लिए तो केवल संगी हमदर्द और हम-ख़याल होना चाहिए, जिसे हम

पसन्द कर सके, जिसके विचारो को हम पसन्द कर सकें। और मैने पिता जी से कहा था कि आप मदन के पिता से बात करने के बदले मदन से बात कीजिए, उसके विचारों को जानिए—आपने अपनी ओर से पढा-लिखा, भला, कमाऊ लडका ढूढ लिया, यह भी देखा उसकी क्या आवश्यकताएँ है ? किन्तु पिता जी मुझे तो सिर फिरा और आवारागर्द समझते है। कहने लगे—'मै लडके के पिता से मिला हूँ, बडे सज्जन है। अहकार उनमें नाम को भी नहीं है। भेंट हुई तो कहने लगे—'मैं तो आप को पाकर धन्य हो जाऊँगा।' मैंने कहा—'आपने उनकी आवश्यकताएँ जान लीं उनके लड़के की आवश्यकताएँ भी तो जानिए। वह भी आपकी लड़की को पाकर धन्य होगा या नहीं।'

राज : (दुर्बल स्वर में) क्या मैं उनकी हमदर्द नहीं ? मुझसे बढ कर उनका हमदर्द कौन होगा !

पूरण : किन्तु शायद तुम उनकी हम ख़याल नहीं। वे प्रोफ़ेसर हैं और वह एम० ए०। दोनों एक दूसरे के विचारों को, एक दूसरे के स्वभाव को एक दूसरे की आवश्यकताओं को समझते होंगे। तुम कदाचित उन्हें नहीं समझ सकतीं, और वे भी शायद तुम्हें नहीं समझ सकते। मैंने पिता जी से यही कहा था—'आपने राजी को उच्च शिक्षा नहीं दी और उसके सबसे बड़े गुण ये हैं कि वह अच्छा खाना पका सकती है, अच्छे कपडे सी सकती है, कई नमूनों के स्वेटर बुन सकती है, मेज़पोश और पलंगपोश काढ़ सकती है, और घर का काम बड़ी कुशलता और मितव्ययता से चला सकती है। कहीं ऐसा न हो कि उसके यही गुण वहाँ जाकर अवगुण बन जायँ, किन्तु उन्होंने मुझे डाँट दिया। कहने लगे—'तुम्हें पढ़ा कर मै बडा सुखी हो गया हूँ जो अब लड़कियों को पढ़ाऊँगा।' मैंने कहा—'तब इसका ब्याह इतने पढे लिखे, से न कीजिए।' कहने लगे—'तू मेरा पुत्र है या पिता !' (कटु व्यग्य से) जैसे उनके पिता होने से मेरी बात ग़लत हो गयी।

रानी : मै पूछती हूँ पिता जी तो इतने पढे लिखे नही, प्रोफेसर मदन तो काफी पढे लिखे हैं। जब वे एक लडकी को चाहते थे तो उन्होंने क्यो की यहाँ शादी।

पूरण : (कन्धे झटका कर) कह नहीं सकता किन्तु शायद ..

राज : (दुर्बल स्वर में) मै जानती हूँ—माता पिता के उपकारो से उऋण होने के लिए।

रानी . (व्यग्य से) तो फिर उन उपकारो को इतनी जल्दी क्यो भूल गये ?

राज : मैने भी एक दिन यही पूछा था। कहने लगे—'मेरे लिए ब्याह करना आत्म-हत्या के समान था। मैं सोचता था, मै अपने भावों का गला घोट दूँगा, अपने भूत के लिए मर जाऊँगा किन्तु मै मर नही सका और जी भी नही सका। मै अपाहिज हो गया हूँ। तुम उस मनुष्य की कल्पना करो जो आत्म-हत्या करने की चेष्टा में अपाहिज हो जाय।'

रानी : तो अब दूसरा विवाह करके वे जी जायेंगे !

राज . वे सोचते हैं कि शायद वे अपाहिज न रहेंगे।

रानी . इतनी सजधज से आये थे आत्म-हत्या करने।

राज : सजधज उनके सगे-सम्बन्धियों के कारण थी।

रानी : इतना हँसते थे, ठहाके मारते थे।

राज : वह सब तो दिखावा था, दिल तो वे पीछे ही छोड आये थे।

रानी : किन्तु तुम्हारे लिए उन्होंने क्या सोचा ? तुम्हारा भी तो उन पर कुछ अधिकार है, तुम उनकी ब्याहता पत्नी हो।

राज : एक दिन सास के कहने पर मै उनके पास गयी थी। उदास थके थके से वे बिस्तर पर लेटे हुए थे। मैने हँस कर कहा—'दर्शनो की बात सोच रहे हो ?' एक उदास सी मुस्कान उनके ओंठों पर फैल गयी। मैने कहा—'मेरा भी

अधिकार है, मैं आपकी परिणीता हूँ। इतने बारातियों के सामने, यज्ञ की अग्नि को साक्षी करके आप मुझे ब्याह लाये है।' कहने लगे—'तुम्हारे अधिकार की नींव केवल एक बाह्य प्रथा पर स्थित है, हृदय से उसका कोई सम्बन्ध नही। सुदर्शन का अधिकार मेरे हृदय से सम्बन्ध रखता है। बारातियो ने, पडित-पुरोहितो ने, हमारे माता पिता ने, यज्ञ की अग्नि ने हमे एक दूसरे के शरीर सौप दिये है, हृदय तो नहीं सौंपे।'

पूरण : यही मै कहा करती हूँ—न जाने कितनी पत्नियाँ मन ही मन अपने संगियों से घृणा करते हुए भी प्रकट उन पर अपना सर्वस्व निछावर कर देती हैं। और न जाने कितने पति अपनी पत्नियों से तीव्र-घृणा करने के बावजूद उनसे निबाहे चले जाते हैं।

राज . कहते थे—'मेरे मन पर सुदर्शन का अधिकार था। मैने सोचा था, उसे वहाँ से हटा कर तुम्हें बैठा लूँगा, किन्तु मै सफल नहीं हो सका।'

रानी : कैसी निर्लज्ज लड़की है यह दर्शनो! जब उन्होने उसका इतना अपमान करके तुमसे विवाह कर लिया तो वह किस प्रकार उनका पीछा पकड़े हुए है? मैं जीवन भर ऐसे व्यक्ति का मुँह न देखती।

राज : शायद वह अब भी उनसे प्रेम करती है।

रानी : मै लाख प्रेम करती, पर उस अपमान के बाद अपने स्वाभिमान को छोड़ कर उनके पीछे यों मारी मारी न फिरती।

(क्षणभर के लिए सब मौन रहते हैं।)

रानी : पर आखिर तू करेगी क्या?

राज : जो ईश्वर चाहेगा।

रानी : ईश्वर यही चाहता है कि पुरुष स्त्रियों पर निरन्तर अत्याचार करें। मुरझाये हुए फूल अथवा सड़े हुए फल की भाँति उठाकर फेंक दें। ईश्वर!......

(बरामदे से पंडित ताराचंद की आवाज़ आती है।)

ताराचंद : *ये सब कहने की बातें हैं बृजनाथ। इस तरह आसानी से मैं उसे नहीं छोड़ सकता। मैं राजी को इसी समय वहाँ भेज दूँगा। उसने समझा कि शायद वह इस प्रकार बचकर निकल जायगा। उसे राजी को घर में बसाना होगा।*

(प्रवेश करते हैं।)

— : *अरे, राजो क्यो इस तरह पडी है? तबीयत तो ठीक है इसकी!*

रानी : *इसे मूर्च्छा आ गयी थी।*

ताराचंद : *इस दशा में मूर्च्छा न आती तो और क्या होता* (नौकर को पुकारते है) *सन्तू, सन्तू*

सन्तू : (बाहर के दरवाजे से आता हुआ) *जी सरकार!*

ताराचंद : *भाग कर बाज़ार से चार छः आने का गाजर का मुरब्बा और कुछ चाँदी के वरक ले आ। यह बहुत दुर्बल दिखायी दे रही है।*

(सन्तू 'जी सरकार' कहता हुआ भाग जाता है)

— : (राज के सिर पर प्यार का हाथ फेरते हुए) *तू किसी प्रकार की चिन्ता न कर बेटी। वह उस चुड़ैल के फंदे में फँस गया है। उस वेश्या ने......*

पूरण : *एक भली लडकी को वेश्या कहते हुए आपको संकोच नहीं होता।*

ताराचंद : *चुप रहो। वह वेश्या नहीं तो और क्या है। जो लड़की एक विवाहित पुरुष के साथ नंगे सिर, नंगे मुँह, बारीक कपड़े पहने, ओंठ, मुँह रँगे आवारा घूमती है जिसे न अपना ध्यान है न भले घराने की दूसरी लडकी का, वह वेश्या नहीं तो और क्या है? मैं कहता हूँ वेश्याओं में भी इतनी लाज-शरम होती होगी। क्यों*

बृजनाथ? वह उस वेश्या के चक्कर में फँस गया है, पर जल्दी ही उकता जायगा, यह मै लिखे देता हूँ।

बृजनाथ. यह तो एक बाहरी आकर्षण है ताराचद, चार ही दिन मे उतर जायगा।

ताराचंद: ईश्वर तुम्हारा भला करे! उसकी तो सारी पगार* इसकी एक साडी पर खर्च हो जायगी।

पूरण आखिर आप क्या फ़ैसला कर आये?

ताराचद: मै मार कर भगा देता सबको पर विवाह हो चुका था। एक भी भॉवर कम रह जाती तो मै रुकवा देता शादी। बिजली पहलवान भुरकस बना कर रख देता सबका, किन्तु राजी का ध्यान आ गया।

रानी आपने मदन से पूछा नहीं कि यदि तुम्हे इसी लड़की से विवाह करना था तो किसी दूसरी भली लडकी का जीवन क्यो नष्ट किया।

ताराचद: पूछा नहीं—मेरे प्रश्नों के मारे नाक मे दम आ गया प्रोफ़ेसर साहब का। बात तक न मुँह से निकली। मैं चाहता तो साथियो सहित उन सबके होश ठिकाने कर देता, किन्तु पडित उदय शंकर वहाँ पहुँच गये। अपने इस लड़के के करतूत का उन्हें भी उसी समय पता चला था। पगड़ी उतार कर उन्होंने मेरे पैरों पर रख दी और कहने लगे—'लड़के से ग़लती हो गयी है। आप चिन्ता न करें, हमारी बेटी को किसी प्रकार का कष्ट न होने पायगा। कुछ दिनों की बात है, इस लड़की का जादू उतरा कि वह उसी के चरणों में जा गिरेगा।'

बृजनाथ: यही तो मैं कहता हूँ। जवानी के मद में लड़के कई बार ऐसी ग़लतियाँ कर बैठते हैं।

रानी: तो क्या इस विवाह के बाद भी आप राजी को वहाँ भेजेंगे?

बृजनाथ: नहीं तो क्या बेटा उस चुड़ैल के पैर वहाँ जमने देंगे?

---

*पगार — वेतन।

इस समय वह राजी को भी रखने के लिए तैयार है।

पूरण : किन्तु उन्होने राजी मे कोई दोष तो बताया होगा।

बृजनाथ : कुछ नहीं। उस पर उस लडकी का जादू सवार है। वह कहता है राजी में और मुझमे किसी प्रकार की मानसिक समता नही। मैने उसे समझाया कि मानिसक समता एक महीने मे नही हो जाती। सुदर्शन को आप एक वर्ष से जानते हैं। राजी को आप एक वर्ष दीजिए। जहाँ तक मेरा विचार है उसने यह काम अपने पिता से बदला लेने के लिए किया है।

रानी : बदला!

बृजनाथ : वह यहाँ विवाह न करना चाहता था, उन्होंने विवश किया। उसी के विरुद्ध एक प्रबल आक्रोश और प्रतिशोध का चिन्ह है यह शादी।

पूरण : किन्तु इस घरेलू झगडे मे एक दूसरी निर्दोष लड़की का जीवन नष्ट करने का उन्हें क्या अधिकार है।

रानी : और इस अपमान के बाद राजी ही क्यों वहाँ जाय?

बृजनाथ : राजी का वह घर है। उस पर उसका अधिकार है। यदि पति एक भूल करता है तो पतिव्रता-स्त्री को उसे क्षमा कर देना चाहिए।

रानी : किन्तु यदि स्त्री ऐसी ग़लती करती है तो क्या पति उसे क्षमा कर देता है?

ताराचद : रानी!

बृजनाथ : यदि राजी इस समय चली जायगी, मान-अपमान का विचार छोड़ विवेक से काम लेगी तो वह अपने पति को इस लडकी के कुप्रभाव से बचा सकेगी (राजी से) देखो बेटी, तुम्हारे पति ने एक भूल की है। तुम दूसरी भूल न करना। उसकी गलती को क्षमा कर देना। उसे अपना लेना। उसे उसकी गलती की याद न दिलाना। उस लडकी को भी न कोसना—यह काम तुम अपने सास ससुर के लिए छोड़ देना—यदि वह उस लड़की के पास जाय

तो उसे न रोकना। यदि वह लडकी तुम्हारे पास आय तो उससे घृणा का व्यवहार न करना। यदि तुम यह सब करोगी तो अन्त में विजय तुम्हारी होगी। उस लडकी से वह कुछ ही दिनों में उकता जायगा।

पूरण : किन्तु वह लडकी अब मात्र दूसरी लड़की नहीं रही, उसकी ब्याहता पत्नी है।

रानी : क्या आप राजी को सौत पर भेजेंगे?

बृजनाथ : माता कौशल्या की एक छोड़ दो सौतें थीं।

पूरण : किन्तु दशरथ राजा थे। आप साधारण लोगो की बात कीजिए। और फिर कौशल्या ही कौन सी सुखी रहीं— चौदह वर्ष तक रोते रोते उनकी आँखें अन्धी हो गयीं। और कौन कह सकता है कि रामायण में सत्य कितना है और झूठ कितना?

ताराचंद : (अत्यधिक क्रोध से) पूरण!

रानी : जिस व्यक्ति ने राजी का इतना तिरस्कार किया, बिना किसी दोष के दूसरा विवाह कर लिया, उसके पास जाने को, उसकी सेवा करने को आप कहते हैं।

बृजनाथ : भगवान शंकर की भाँति हिन्दू देवियों ने कई बार जान बूझ कर विष-पान किया है।

पूरण : किन्तु मै पूछता हूँ, विष पान क्यों आवश्यक हो?

ताराचंद : (हुक्के की नै छोड़ कर) तो क्या तुम चाहते हो कि वह जीवन भर यहाँ बैठी जलती कुढ़ती रहे!

रानी : जले कुढ़ेगी क्यों, आप उसे पढाइए, लिखाइए अपने पाँवों पर खड़ा होना सिखाइए।

बृजनाथ : बेटा पढ़ाना लिखाना लड़की को आर्थिक रूप से स्वतन्त्र बनाने के लिए होता है, किन्तु विवाह का केवल यही पहलू तो नहीं, दूसरा भी है। यदि विवाह का मात्र आर्थिक पहलू ही होता तो राजे महराजे अपनी लड़कियों के विवाह न करते।

√पूरण : राजी का दूसरा विवाह हो सकता है।

ताराचद : } पूरण!
राज : } भैय्या!

√पूरण : पुरुष एक स्त्री के होते दूसरा विवाह कर सकता है तो स्त्री क्यो नही कर सकती, और विशेषकर पुरुष के ठुकरा देने पर?

बृजनाथ : कानून के अनुसार हिन्दू विवाह टूट नहीं सकता। कानून राजी को इस बात की आज्ञा न देगा।

पूरण : प्रोफ़ेसर मदन दे देंगे।

राजी : (अत्यन्त पीडा और दुख से, जैसे इस जिक्र ही से उसे कष्ट हो रहा हो) भय्या!

ताराचंद : तुम्हें शर्म नहीं आती, अब ब्राह्मणों की लड़कियाँ वेश्याएँ बनेंगी!

पूरण : किन्तु ब्राह्मणो की लडकियाँ क्या·········

ताराचंद : (गरज कर) चुप रहो।

राजी : मै जाऊँगी पिता जी। आप अभी मुझे स्वय वहाँ जाकर छोड़ आइए।

रानी : गीली लकडी की भाँति तुम्हें सुलगना पसन्द है।

राजी : मै यहाँ भी सुलगती रहूँगी जीजी।

(बृन्दाबन प्रसन्न-वदन प्रवेश करता है।)

बृन्दाबन : ताराचद बधाई हो! लो मुँह मीठा कराओ! और रानो को तैयार करदो।

ताराचद : क्या त्रिलोक से तुम मिले?

बृन्दाबन : मै कहता हूँ, मैंने इस चतुराई से बात की कि वह न केवल मान गया, बल्कि रानो को लेने आ रहा है।

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारा भला करे बृन्दाबन, ईश्वर तुम्हारा सदैव भला करे! तुमने मेरे वंश को इस कंलक के टीके से बचा लिया। तुमने केवल रानो का जीवन ही नहीं सुधारा,

मेरी भी सबसे बड़ी चिन्ता दूर कर दी। यह बताओ यह चमत्कार हुआ कैसे ?

बृन्दावन : एक दिन अपने लडके का जिक्र करते हुए मै ने बातों में त्रिलोक से उसके विवाह और घरेलू जीवन की बात चला दी। उसके भाग्य को सराहा कि उसे रानी जैसी भले कुल की सुशील और समझदार लडकी मिली है। इस पर जल कर वह अपने वैवाहिक जीवन की असफलता का रोना रोने लगा। उसने रानी के विरुद्ध शिकायतों का एक दफ्तर खोल दिया। मैने उसे समझाया कि जहाँ परिवार इकट्ठे रहते हैं, वहाँ बहुओं के विरुद्ध ये शिकायतें आम होती है। सौ में से शायद ही एक बहू ऐसी मिले जिसके विरुद्ध ये शिकायतें न हों।

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारा भला करे !

बृन्दाबन : (प्रशसा से खुश होकर) इस पर वह झेंपा। फिर कहने लगा—इस दशा में जब कि मैंने प्रैक्टिस अभी हाल ही ही में आरम्भ की है, मेरे लिए अलग घर बसाना कठिन है। मैंने कहा—यदि तुम अलग रहना चाहो तो तुम्हारे ससुर ही तुम्हारी सहायता कर सकते हैं। उनका पुराना मकान कचहरी रोड पर है। एक दिन वे ज़िक्र भी कर रहे थे कि विवाह के अवसर पर कुछ कारणों से मै उसे रानी के नाम नहीं कर पाया। यदि तुम और रानी उधर आ जाओ तो वे अत्यन्त प्रसन्न होंगे। मकान तुम दोनों को दे देंगे, और यों भी वे हर प्रकार से तुम्हारी सहायता करते रहेंगे।

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारा भला करे !

बृन्दाबन : इस पर वह मान गया और स्वयं ही कहने लगा कि वास्तव में सौ में से अस्सी जोड़ों के असफल रहने का कारण कुटुम्बों का सम्मिलित होना है। नये घर में आकर नयी ब्याही लड़कियों को अपने व्यक्तित्व को नये सिरे से ढालने की कठिनाई से दो चार होना पड़ता है। जब वे इस चेष्टा में असफल होती हैं, तो उन्हें

प्रतिपल सास नन्दों के ताने सहने पडते है—और मै तुम्हें सच बताऊँ, कहने लगा—मै तो सचमुच. रानो को मन से चाहता हूँ, किन्तु माता पिता और बहिनो के हाथो विवश हूँ।

बृजनाथ : और क्या, ये अनपढ सास ननदें जो न करें थोड़ा है!

बृन्दाबन : बस उस दिन तो इतना कह कर मै चला आया। आज मिलने गया तो पता चला कि इस बीच में बाप बेटे में तुमुल-युद्ध हो चुका है। लड़के के इस प्रस्ताव को सुन कर कि वह अपनी पत्नी को लेकर अलग हो जायगा, पिता ने उसे बेदख़ल करने की धमकी दी है। इस पर वह भी तन गया है और उसने संकल्प किया है कि वह तगी से गुजारा कर लेगा, किन्तु रानी को लेकर अलग हो जायगा। मैने उसे समझाया कि तुम्हारे ससुर तुम्हारी हर प्रकार से सहायता करेंगे। रानी शिक्षा पा रही है और तुम्हारी उपयुक्त सगिनी सिद्ध होगी। उसने कहा था, "मैं अभी रानी को लेने के लिए जाने की सोच रहा हूँ।" आज वह किसी समय भी रानी को लेने के लिए आ सकता है। लो, अब कराओ मुँह मीठा ताराचंद!

ताराचंद : (उठ कर उसे आलिंगन में कस लेते है) इस उपकार का बदला किस प्रकार चुकाऊँ भाई! तुमने मुझे जीवन भर के लिए ख़रीद लिया। इन सफ़ेद बालों की लाज रख ली तुमने बृन्दाबन! (पूरण से) क्यों पूरण, मैं न कहता था बृन्दाबन उसे मना लेगा। बुद्धिमान यो बिगड़ी बात बना लेते हैं, और तुम कहते थे (नकल उतार कर) मै उससे बात तक करना अपना अपमान समझता हूँ।

पूरण : मेरा अब तक यही विचार है।

ताराचंद : (मुँह चिढ़ाते हुए) मेरा अब तक यही विचार है। शरम तो नहीं आती (रानी से) चलो रानी, तैयारी करो बेटा।

रानी : आपने उन्हें मकान का लालच दिया है।

ताराचंद : लालच! वह तो मैं तुम लोगों के नाम करने ही वाला था।

रानी : (और भी दृढता से) आपने उन्हे मकान का लालच दिया है।

ताराचद : तुम तो पागल हो। वह तो मै तुम्हारे नाम करूँगा, किन्तु बेटा स्त्री का धन उसके पति ही का होता है। तुम और त्रिलोक कोई दो थोडे ही हो।

रानी : न मै उनका घर चाहती हूँ न आपका मकान।

ताराचद : क्या ... . . ? . ....?... ....!

रानी : मै वहाँ नही जाना चाहती।

ताराचंद : पागल हो गयी है।

रानो : जिस व्यक्ति के समीप चन्द हज़ार के एक मकान का मूल्य मेरे मान के कहीं अधिक है, जो मुझे नही, मकान को चाहता है, मै उस लोलुप की शक्ल तक नही देखना चाहती।

ताराचद : (क्रोध से) रानो!

बृन्दावन : हिन्दू देवियाँ सपने में भी कभी अपने पति के विरुद्ध ऐसे शब्द नहीं कहतीं।

पूरण : चाहे वह पति कितना भी अत्याचारी क्यों न हो?

ताराचंद : पूरण!

बृन्दावन : तुम लोग ग़लत समझते हो। वह अत्याचारी नही, वह लोलुप भी नही, वह तो बेचारा गाय है। सारा दोष तो उसके माता पिता का है।

पूरण : (व्यंग्य से) बेचारा गाय!

बृन्दावन : रानो, वह वास्तव में तुमसे प्रेम करता है। तुम्हारा आदर करता है। तुम्हारे लिए तो वह अपने माँ बाप तक को छोड़ने के लिए तैयार है।

रानी : मैंने कभी नहीं चाहा कि वे अपने माँ बाप से अलग रहे, अपने माँ बाप को छोड़ दें, किन्तु यदि इस प्रकार वे एक मकान हथिया सकें, तो इस बात का ढढोरा पीटने में भी उन्हें संकोच न होगा। आप कहते हैं, वे मुझसे प्रेम करते हैं, यदि मकान के साथ' आप उन्हें मोटर भी ले देने का वचन दें तो वे मेरी पूजा तक करने लगेंगे।

बृन्दावन : (शर्म दिलाते हुए) रानी बेटी !

रानी . मै पूछती हूँ, इस लोलुपता का पेट आप कब तक भर सकते है ? और मै ही ऐसे लालची के साथ कब तक रह सकती हूँ ?

ताराचद : (गरज कर) तू अपने पति से घृणा करती है ।

रानी : (निर्भीकता से) मेरा रोम-रोम उससे घृणा करता है ।

ताराचंद : (सयम को खाकर) रानो तू बके जा रही है और मै मौन तेरे मुँह की ओर तक रहा हूँ । तू नहीं जानती, अपने पति के विरुद्ध सपने मे भी बुरी बात सोचना कितना बडा पाप है । तू नहीं जानती तू ने एक ब्राह्मण के घर में जन्म लिया है, तुझे एक ब्राह्मण माँ ने पाला है, तू किसी चांडाल के घर उत्पन्न नही हुई ।

पूरण : जहाँ तक मनुष्यता का सम्बन्ध है, ब्राह्मण और चांडाल में कोई अन्तर नही । और फिर ब्राह्मण की लडकी का दिल चांडाल की लड़की से बड़ा नहीं होता और न वह पत्थर का होता है ।

ताराचद : चुप रहो पूरण और अपनी फ़िलासफ़ी अपने पास रखो ! (रानी से) तू समझती है रानो कि अपने पिता के सम्मुख तू ऐसी अधर्म की बात करेगी और वह चुपचाप सुन लेगा ।

रानी : आपके धर्म की बातें मैंने बहुत सुन ली । आपका धर्म भी पुरुषों का धर्म है ।

बृन्दावन : मै कहता हूँ बेटी, त्रिलोक सचमुच तुम्हारा आदर करता है ।

रानी : मैं उस व्यक्ति को आप से अधिक जानती हूँ ।

बृजनाथ : तुम्हारे लाभ ही के लिए तो ये मकान तुम्हारे नाम कर रहे हैं बेटी !

रानी : आप यह समझते है कि ये मकान मेरे नाम करके मुझ

पर कोई उपकार कर रहे हैं। ये मेरे गले मे सदा के लिए दासता की बेड़ी डाल रहे हैं। मुझे ऐसे व्यक्ति के साथ रहने को विवश कर रहे है जिसके लिए मेरे मन में लेष-मात्र भी सम्मान नही। ये मुझे फिर उस नरक में धकेलना चाहते है, जहाँ घुट-घुट कर मै अधमरी हो गयी हूँ। ये चाहते हैं, इनके नाम पर, इनके कुल के नाम पर कोई कलक न आये, चाहे इनकी लडकी घुट-घुट कर मर जाये।

ताराचद : (अत्यधिक क्रोध से) रानो !

रानी : (पूर्ववत बृजनाथ से) मै उस व्यक्ति के साथ एक वर्ष तक रही हूँ और जितना मैं उसे जानती हूँ, आप या चाचा जी नहीं जानते। एक मकान के लोभ में वह मुझे ले जायगा। वह मेरी प्रशसा और खुशामद भी करेगा, किन्तु क्या इतना मूल्य देने के बाद इस खरीदे हुए पति को मैं पसन्द कर सकूँगी ? उसका सम्मान कर सकूँगी ? उसे पति परमेश्वर समझ सकूँगी !

ताराचंद : मालूम होता है इस निकम्मे, आवारागर्द लडके ने तेरा भी दिमाग़ खराब कर दिया है। पिता के नाते मेरा यह आदेश है कि तू अपने पति के घर जायगी।

रानी : मै इस आदेश का पालन नहीं कर सकती।

ताराचंद : तू अपने पति के घर जायगी या इस घर में भी न रहेगी।

रानी : मैं इस घर को भी नमस्कार करती हूँ।

(हाथ जोड़कर चलने को उद्यत होती है।)

बृन्दावन : रानो बेटा, तू कहाँ जा रही है ? तू नहीं जानती कि तू लड़की है, तू कहाँ जायगी।

रानी : (अवरुद्ध कठ से) जहाँ सींग समायेंगे, चली जाऊँगी, किन्तु इस घर में एक पल भी न रहूँगी।

पूरण : इस बात की चिन्ता न कीजिए चाचा जी। रानो को कहीं और न जाना होगा। यह मेरे साथ जायगी। जिसे

आप लोग निकम्मा और आवारा समझ रहे हैं, वह अपनी सारी आवारागर्दी छोड़कर तन-मन से परिश्रम करेगा, कमायेगा और अपनी बहिन को इस योग्य बनायेगा कि वह अपने पाँवों पर खड़ी हो सके। और अपने पिता के मकान या मोटर के बल पर नहीं, अपनी योग्यता के बल पर आदर-मान पा सके।

ताराचद : अच्छा, तो यह आग तुम्हारी लगायी हुई है। निकल जाओ, तुम दोनों मेरे घर से निकल जाओ!

राजी : (उठकर अपने पिता को समझाते हुए) पिता जी!

पूरण : चलो रानो, इन पिताओं और पतियों में कोई अन्तर नही।

बृन्दावन } ताराचद!
बृजनाथ } पूरण!

ताराचद . (उसी क्रोध की दशा में) चले जायें। मेरी आँखो से दूर हो जायें। ऐसी सन्तान से मै निःसन्तान भला। बचपन ही से इनकी माँ मर गयी। इतनी मुसीबतों से मैने इन्हे पाला। क्या इसीलिए कि बड़े होकर ये ऐसे निर्लज्ज और नाखलफ़ साबित हों?

रानी . (रुँधे हुए गले से) आप अन्याय करते है पिता जी। हम आप के उपकारो का बदला नहीं चुका सकते, किन्तु........

ताराचद : (चीख कर) चले जाओ! मेरी आँखो से दूर हो जाओ।

राज : (रानी की ओर बढते हुए) जीजी!

रानी : (जाते जाते रुक कर) आज से हमारे मार्ग पृथक होंगे राजो। मै प्रार्थना करूँगी कि तुम सुखी रहो।

पूरण : स्वाभिमानियो के लिए आदि-काल से यह मार्ग खुला है राजो।

राजो . मेरा मार्ग भी तो आदि है भैया।

पूरण : परमात्मा तुम्हारे पाँवों को छलनी होने से बचाये! (रानी के कन्धे पर हाथ रखते हुए) चलो रानो!

आदि मार्ग

(चलते है)

बृन्दाबन } (उठते हुए) *ताराचद !*
बृजनाथ } (उठते हुए) *पूरण !*

(पर्दा एक दम गिर पड़ता है)

पात्र

अजली

अनिमा

मुन्नी

नीरज

वकील साहब, श्रीपत, राधू

[पर्दा वकील साहब के खाने के कमरे में उठता है। कमरा सीधा-सीधा पर अत्यन्त स्वच्छ है। सजावट का सामान कुछ अधिक नहीं, पर जो है, निष्कलकरूप से साफ़ और उज्जवल है—मध्य एक खाने की मेज है, इस के इर्द-गिर्द कुर्सियाँ लगी हैं। बायीं ओर कोने में एक स्टेंड पर हाथ मुँह धोने के लिए चिलमची टिकी है। निकट ही तिपाई पर पानी का लोटा रखा हुआ है।

दीवार पर खूँटी के साथ तौलिया लटक रहा है। छत पर बिजली का बड़ा पखा मन्द-गति से घूम रहा है और सामने दीवार में टँगा हुआ एक क्लाक अनवरत टिक-टिक कर रहा है।

दायीं और बायीं दीवारों में, इधर को, एक एक दरवाजा है। ये दोनों दरवाजे क्रम से आँगन और ड्राइंग-रूम को जाते हैं।

दायीं दीवार के कोने में भी एक दरवाजा है जो नन्हें नीरज के छोटे से सोने के कमरे में खुलता है।

पहली दृष्टि में जो बात मन को अनायास प्रभावित करती है, वह कमरे की स्वच्छता और सफ़ाई है। फ़र्श साफ़, दीवारें साफ़, आलमारियाँ और दरवाजों के तख्ते और शीशे साफ़, चिलमची का स्टेंड, तिपाई, लोटा, मेज-कुर्सियाँ, क्लाक और पखा—प्रत्येक वस्तु स्वच्छ और साफ़ है। कहीं कोई धब्बा, जाला या धूल नहीं। लगता है, जैसे किसी गृहस्थ का नहीं किसी अस्पताल का डाइनिंग-रूम है।

पर्दा उठते समय पाँच कुर्सियाँ मेज के नीचे पड़ी हैं। केवल उनका पृष्ठ-भाग दिखायी देता है। छठी पर अनिमा (२५ एक वर्ष की, मझले क़द और गदराये शरीर की तन्वी) बैठी सम्भवत. दूसरों के आने की प्रतीक्षा में, साड़ी के लिए लेस बुन रही है।

प्रभात की वेला है। क्लाक में आठ बजने को हैं। क्षण भर को मात्र घड़ी की टिक-टिक सुनायी देती है। फिर पृष्ठ-भूमि से अंजली का स्वर आता है।]

अजली : (पृष्ठ-भूमि में) *नीरज बेटा, कपडे नही बदले तुमने ?*

नीरज : (पृष्ठ-भूमि में) *बस हो गया तैयार ममी !*

अजली : (पृष्ठ-भूमि में) *मुन्नी नाश्ता रखो मेज़ पर* (तनिक कड़े स्वर में) *तुम कर क्या रही हो ? आठ बजने को आये है और नाश्ते का कहीं पता नहीं।*

मुन्नी : (पृष्ठ-भूमि में) *बस लिये जा रही हूँ मेम साहब !*

अजली : (तनिक समीप से) *और वकील साहब से कहो—नहा कर सीधे इधर आयें। नाश्ता कर ले, फिर चाहे जो करते रहें। कपडे उनके आँगन में पलंग पर रखे हैं और कन्नी-शीशा मेज पर।*

[बोलते बोलते प्रवेश करती है। अंजली यद्यपि अनिमा की सम-वयस्क है, किन्तु उससे पाँच एक वर्ष बडी दिखायी देती है—पतले छरहरे शरीर की दुर्बल नसों वाली युवती, जो न केवल विवाह की चक्की में जुटी हुई है, वरन् पूरी निष्ठा और गम्भीरता से जुटी हुई है! सुन्दर मुख पर अभी से हल्की सी लकीरें बन गयी हैं और मुस्कान के बावजूद, जो इस समय उसके ओंठों पर खेलने लगी है, उसका मस्तक, मस्तिष्क की सदा तनी रहने वाली नसों का परिचय देता है।

परन्तु इस सूक्ष्म मलिनता के अतिरिक्त, क्या पहरावे की सुरुचि, स्वच्छता और निर्दोषता और क्या व्यक्तित्व की स्फूर्ति सजगता और जागरूकता, हर बात में वह अनिमा को मात देती है।

अनिमा उस मुक्त-मृगी सी लगती है, जो जाल के बंधन से अनभिज्ञ है। वह भी यद्यपि नहा-धोकर बैठी है, पर उसके बनाव-सिंगार और पहरावे से पूरी बेपरवाही टपकती है और अजली, लगता है, जैसे कोई देवी, किसी आन्तरिक विचार के कारण जिसके माथे पर तेवर पड़ गये हैं, अभी अभी साँचे में ढल कर आयी है।]

आदि मार्ग

अजली · (कमरे मे प्रवेश करते हुए खिजलाये से स्वर में) अभी तक स्नान नही किया और आठ बजने को आये है।

वकील साहब · (स्नानगृह से) अरे भई आया, आ इ ..या, आ ..।.. इ या !

अजली (अनिमा की ओर देखते हुए मुस्करा कर) इनका स्वभाव भी... तुम बैठे बैठे ऊब तो नही उठी अन्नो ! मैने कहा, नाश्ते का समय हुआ जा रहा है, इन सब को तैयार कर दूँ। (हँसती है) मै शोर न मचाऊँ तो नाश्ते को दस बज जायँ।

(कुर्सी मेज के नीचे से खींच कर उस पर बैठ जाती है।)

अनिमा . (निरन्तर लेस बुनते हुए) मै तो चकित रह गयी अंजो दीदी तुम्हारे यहाँ की व्यवस्था और समय-निष्ठा देख कर।

अजली . (प्रशसा से फूल कर) इस घर के कण-कण को मैने व्यवस्था, समय-निष्ठा और सभ्य लोगो के आचार-व्यवहार सिखाये है। कही तुम पहले आकर देखतीं—घर भूतों का डेरा बना हुआ था। इतना बड़ा मकान, यह भी तो पता न चलता था कि कौन सा कमरा खाने का है, कौन सा सोने का और कौन सा उठने-बैठने का। सभी जगह बर्तन और चारपाइयाँ पड़ी रहती थीं।

अनिमा : परन्तु नौकर तो...... ।

अंजली : थे ! पर न उन्हे बात करने का सलीका था, न काम की तमीज़ (अतीव उपेक्षा से) गंदे, गँवार, चोर और बदतमीज़ !

अनिमा : मै तो चकित रह गयी मुन्नी को देख कर। नौकरानी लगती ही नहीं। मै तो समझी जीजा जी की बहिन. ....

अंजली : (सहसा मुड़ कर) हैं...ऐं...ऐ .. !

अनिमा : इतनी साफ़ सुथरी, इतनी सुघड़, इतनी सभ्य ...

अजली : (प्रसन्न होकर) कितनी जान खपायी है उसके साथ, तुम कल्पना भी नहीं कर सकती और राधू ..

अनिमा : वह आया तो मै समझी तुम्हारे श्वसु. ...(घबरा कर) कि जीजा जी के पि.. . (बेतरह घबरा कर) कि .कि... तुम्हारे कोई बुजुर्ग है। मैं उसके लिए आदर से कुर्सी छोड़ कर खडी हो गयी।

अजली : बुजुर्ग.. ... . !

अनिमा : (अपनी बात जारी रखते हुए) वह चौंका। परन्तु जब तक वह कुर्सियाँ-मेज झाड़ता रहा, मुझे बैठने का साहस नहीं हुआ। अब भी, यद्यपि मैं भली-भाँति जान गयी हूँ कि वह नौकर है, जैसे विश्वास ही नही होता।

अजली : स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे—नौकरों को सदैव साफ-सुथरा रखना चाहिए। घर के भाग्य का पता जैसे देहली से चलता है, वैसी ही मालिको की संस्कृति का भान नौकरों की सभ्यता से होता है। गंदे नौकरों से नाना जी को अतीव घृणा थी। उनके साथ रह कर मै भी वैसी ही हो गयी। मैं तो चाहती हूँ कि नीरज भी सफ़ाई-पसन्द, सभ्य और संस्कृत बने !

अनिमा : बड़ा प्यारा बच्चा है नीरज, इधर से गुज़रा तो मुझे दोनों हाथ जोड कर 'नमस्कार' किया।

अंजली : (फूल कर) सभ्यता और शिष्टाचार का तनिक भी अभाव तुम उसमें न पाओगी। (आवाज़ देती है) हो गया तैयार नीरू बेटे ?

नीरज : (पृष्ठ-भूमि से) जी मम्मी !

अंजली : (नौकरानी को आवाज़ देती है) मुन्नी नीरू बेटे को नाश्ता दे दो।

मुन्नी : (पृष्ठ-भूमि में) दे रही हूँ मेम साहब !

अंजली : वह सदैव प्रातः यथा समय उठता है; अपने डैडी के साथ सैर को जाता है; स्नान-संध्या करता है और फिर कपड़े बदल कर समय पर नाश्ते के लिए तैयार हो जाता है। स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे—समय-निष्ठा सभ्यता की पहली निशानी है—और नीरू काम, आराम और खेल

की वेला को भली-भाँति जानता है। समय पर पढ़ता है, समय पर आराम करता है और समय पर खेलता है। सोने की वेला खेलते या पढते अथवा पढ़ने की वेला खेलते या सोते तुम उसे कभी न पाओगी।

(जाकर देखती है चिलमची आदि साफ़ है या नहीं।)

अनिमा . एक हमारे यहाँ के बच्चे है—आठ-आठ बजे तक सोते रहते है; कान पकड-पकड कर जगाना पडता है; महीनों स्नान नहीं करते और असभ्य इतने हैं कि दूसरों का तो क्या, माता-पिता तक का आदर नहीं करते।

अंजली : स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे—बच्चों को आरम्भ ही से अच्छा स्वभाव डालना चाहिए—इतना बड़ा हो गया है नीरज, कभी कान उमेठने या डाँटने की नौबत नहीं आयी।

अनिमा : मैने पूछा—नीरज बेटा नाश्ता तो तुम हमारे साथ ही करोगे ना? कहने लगा—मै अपनी ही मेज पर नाश्ता करता हूँ मौसी जी।

अंजली : उसकी अलमारी, मेज़, टायलेट का सामान, सोने का कमरा—सब कुछ अलग है। वह सदैव अपनी मेज़पर नाश्ता करता है; अपनी आलमारी मे कपड़े रखता है; अपने बिस्तर में सोता है; अपनी कघी से बाल बनाता है—अपने सब काम आप करता है। स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे—बच्चों को अपनी सहायता आप करने का स्वभाव डालना चाहिए। . . ...

अनिमा . मै तो भई मान गयी तुम्हे। मै स्वय सोच रही हूँ, कुछ दिन तुम्हारे पास रह कर अपनी आदतें सुधारूँ। समय पर उठूँ, समय पर खाऊँ, समय पर सोऊँ। कहीं मुझे तुम्हारे ऐसा सलीका और सुघड़ापा आ जाय .....

अंजली : स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे—सुघडापा नारी का 'आभूषण है' और सदाचार पुरुष का—और मैं चाहती हूँ, नीरज सभ्य, शिष्ठ और समय-निष्ठ बने!

अनिमा : और मे कहती हूँ अंजो, तुम अपने उद्देश्य में पूर्ण-रूप से सफल हुई हो। अपने घर को तुमने घडी सा बना रखा है, सब मानो उसके पुर्ज़े है।

अंजली : जीवन स्वय एक महान घडी है। प्रातः संध्या उसकी सूइयाँ हैं। नियम-बद्ध एक दूसरी के पीछे घूमती रहती है। मैं चाहती हूँ—मेरा घर भी घडी ही की भाँति चले। हम सब उसके पुर्ज़े बन जायें और नियम-पूर्वक अपना अपना काम करते जायें।

अनिमा : जीजा जी को तो बड़ा बुरा लगता होगा यो बँधना?

अंजली : बुरा! (कुर्सी पर बैठते हुए हँसती है) बड़े सिटपिटाए थे पहले-पहल, पर मैं ले ही आयी अपने ढब पर। सच कहती हूँ, मुझे नीरज पर इतनी जान नहीं खपानी पड़ी, जितनी तुम्हारे इन जीजा जी पर। कोई भी तो कल न थी सीधी। न सफ़ाई का ध्यान, न समय का। मुझे चीज़ों को अपनी जगह रखते देर लगती, इन्हें बखेरते देर न लगती। नहा कर बाल बनाते तो कंघी कहीं रख देते, शीशा कहीं और तौलिया कहीं। कचहरी से आकर कपडे बदलते तो कोट कहीं फेंक देते और पतलून कहीं। सच कहती हूँ, कई हैट टूट गये। आते ही कुर्सी पर पटक देते और फिर जब बेपरवाही में बैठने लगते तो ठस!

(हँसती है)

अनिमा : परन्तु जीजा जी तो........

अंजली : (मुँह बना कर) बड़े संस्कृत दिखायी देते हैं, कभी इधर की वस्तु उधर नहीं रखते! जी हाँ! जानती हो, कितनी माथा-पच्ची करनी पड़ी है इनके साथ?। कितनी भूख हड़तालें की हैं? कितनी बार रूठ कर पीहर जा-जा बैठी हूँ? (हँसती है) मैं जब आयी तो इनके लिहाफ़ पर ग़िलाफ तक न था। मैंने लिहाफ़ के नीचे चादर लगा दी। परन्तु जब भी लिहाफ़ ओढ़ते तो चादर एक ओर होती और लिहाफ़

दूसरी ओर। हार कर मैने उसे लिहाफ के साथ ही सी दिया। दूसरे दिन क्या देखती हूँ—चादर लिहाफ के ऊपर तैर रही है—लिहाफ ही श्रीमान् ने उलटा ओढ रखा था।

(अनिमा हँसती है)

क्या कहूँ, पलग-पोश समेत बिस्तर मे घुस जाया करते थे।

[वकील साहब हँसते हुए प्रवेश करते है। अजली से केवल सात दस वर्ष बड़े हैं, किन्तु शरीर अभी से छोड दिया है। यों अपटू-डेट सूट में आवृत है। पतलून की क्रीज और कोट के कालर, लगता है, जैसे अभी प्रेस किये गये हैं। अजली के साथ बैठें तो बेमेल नहीं लगते। उनकी बेपरवाही को सूट पूरे तौर पर छिपाये हुए है, किन्तु जब भी हँसते है तो पता चल जाता है कि वास्तव में सूट ने उन्हें कैसा जकड रखा है।

बात करते है तो प्राय कधे झटकाते है। पहले कदाचित विवशता के समय ऐसा करते होंगे, पर अब तो यह उनका स्वभाव बन गया है।]

वकील साहब : *अरे भई ससार मे दो प्रकार के प्राणी होते है—एक वे, जो आप भी चलते है और दूसरों को भी चलाते हैं—इजन की भाँति—अंजो उनमे से है। दूसरे वे, जो आप नहीं चल पाते, पर दूसरा कोई चलाये तो उसके पीछे पीछे चले जाते हैं* (हँसते है) *गाडी के डिब्बों की भाँति! तो भई हम तो इस दूसरी श्रेणी के लोगों में से हैं।*

(कुर्सी खेंच कर उसमें धँस जाते है।)

अनिमा : *गाड़ी के डिब्बे!* (हँसती है) *जीजा जी भी........*

वकील साहब : *और अजो जैसे चलाती है, चले जाते है। क्यों अजो! दिया कभी शिकायत का अवसर हमने तुम्हें?* (हँसते हैं) *दिन में तीन तीन बार नहाते हैं; चार चार बार हाथ-पाँव*

धोते है; कम से कम चार बार खाते हैं और पॉच बार .. .

अंजली : इस नाश्ते को आप.......

वकील : तुम इसे नाश्ता कह लो, हम तो इसे खाना ही कहेंगे। (अपनी बात जारी रखते हुए) और पॉच बार कपडे बदलते है, समय-निष्ठा, स्वच्छता, नीति-रीति, सभ्य समाज के आचार-व्यवहार—प्रत्येक बात का ध्यान रखते है (हँसते है) अजो के साथ विवाह करने के बाद, लगता है, जैसे हम तो अछूत थे, अजो ने आकर हमारा उद्धार किया है।

[पूरे जोर से ठहाका मारते है, जिसमें अंजो की "आप तो..." और अनिमा की "जीजा जी भी..." गुम हो जाती है।]

अंजली : (लज्जा को स्वर की तीव्रता में छिपा कर) मुन्नी, नाश्ता रखो मेज़ पर!

मुन्नी : (नाश्ते की ट्रे लाते हुए) यह लायी मेम साहब!

[नीचे के सम्भाषण में मुन्नी चुपचाप नाश्ते का समान मेज पर रखे जाती है।]

वकील साहब : और सच कहते हैं,हमने अपने आपको सोलहो आने अंजो के अनुरूप बना लिया है। (उपेक्षा से मुँह बना कर) हमें स्वय अब गंदे लोगों से अत्यन्त घृणा होती है। ये फ़ौजदारी के वकील, आठों याम अभियुक्तों के साथ रहने के कारण, स्वयं भी उन्हीं जैसे लगते हैं (हँसते हैं) वही स्वभाव, वही आचार-व्यवहार, और भई हम सच कहते हैं, कुछ की तो आकृति भी अभियुक्तों........

अनिमा : (हँस कर) जीजा जी आपकी आकृति तो अभी भगवान की कृपा से....... .

वकील साहब . मुझे अंजो ने बचा लिया, नहीं उनके साथ रह कर तो मेरी आकृति भी (हँसते हैं) सभ्यता और सदाचार तो उन्हें छू भी नहीं गये।

अजली : *स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे—सदाचार पुरुष का भूषण है ।*

वकील साहब . *पर भूषण-अलकार स्त्रियो की चीज़ समझ कर वे इसे पास भी नहीं फटकने देते । सदैव अश्लील बातें करने मे उन्हे रस मिलता है और गदे इतने होते है कि निकट बैठना कठिन हो जाता है । जूतों समेत मेज़ पर पॉव रखे, बैठे डकराते रहते है (अतीव घृणा से) अशिष्ट कही के ! और पानी के बताशे, दही-बडे और चाट खाकर... .*

अजली : *स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे—दही-बड़े और चाट .*

वकील साहब : *मै तो निरन्तर नाना जी को धन्यवाद दिया करता हूँ, जिन्होंने तुम्हारे द्वारा मुझे इस चटोरपने से बचा लिया । सौगन्ध ले लो जो पिछले छः वर्ष में चाट को मुँह भी लगाया हो । और तो और कभी नीरज....*

अंजली . *मुँह लगाने देती हूँ मै नीरज को ऐसी गदी चीज़ें !*

वकील साहब . *जब मै देखता हूँ कि बडे बडे वकील, ऐडवोकेट दही-बडे और पानी के बताशो जैसी निकम्मी चीज़ें खा खाकर दोने वही फर्श पर फेंक देते है, तो मै स्वर्गीय नाना जी को दुआ देता हूँ, जिनकी शिक्षा, अजो के द्वारा मुझे इस अशिष्टता से बचाये हुए है । भगवान साक्षी है, जो मैने पिछले छः वर्ष से चाट को एक बार भी मुँह लगाया हो ।*

अनिमा : (हँस कर) *केवल दोने देखे हैं ।*

(वकील साहब एक खोखला ठहाका लगाते है)

अंजली : *अच्छा फिर हँसिएगा, पहले नाश्ता कर लीजिए ।*

वकील साहब : *भई मै कहता था, कुछ देर प्रतीक्षा कर लेते । वह श्रीपत का पत्र आया था कि आज प्रातः की गाडी से वह आ रहा है ।*

अजली : (व्यग्य से) *आ रहा है ! इन छः वर्षों में उसने कितने पत्र नहीं लिखे, कभी आया भी ?. आप भी बस...*

नाश्ता आरम्भ कीजिए !.. आ चुका श्रीपत.... नृपति भाई का पत्र आता तो मैं दृष्टि दरवाज़े से लगाये बैठी रहती, पर श्रीपत......क्या विश्वास उसका ?

वकील साहब : भई वह घुमक्कड आदमी है। सदा बाहर दौरों पर रहा है।

अजली : जी दौरों पर रहा है ! जब भी इधर से गुजरा, बडे तमतराक़ से लिख दिया—श्रीमान राय श्रीपत राय इस बार अवश्य अजो दीदी के ग़रीब-ख़ाने पर पधारेंगे—लेकिन सदा गुज़र गये और पता भी न दिया, किस गाड़ी से गुजरे। स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे कि श्रीपत. ...

श्रीपत : (ड्राइंग-रूम की चौखट से) श्रीमान राय श्रीपत राय पधारते है।

[सब चौंकते हैं। श्रीपत ड्राइंगरूम की चौखट में खड़ा है। कीमती सिल्क का कुर्ता और लट्ठे का पायजामा पहने हुए है, लेकिन कुर्ते के दो बटन खुले हैं और दोनों कपड़े तनिक मैले हो रहे हैं। आयु में अंजो से दो अढ़ाई वर्ष कम है, परन्तु अंजो की भाँति पतलादुबला और दुर्बल नसों का व्यक्ति नहीं। खाने पीने और मौज करने वाला आदमी है। लम्बा, तगडा और क़द्रे मोटा, कलाई में कीमती घडी और मुँह में स्टेट एक्सप्रेस का सिगरेट !]

वकील साहब : (उल्लास से) श्रीपत !

श्रीपत : (सिगरेट वहीं फेंक और बढ़कर वकील साहब को आलिंगन में लेते हुए) जीजा जी !

वकील साहब : (उसे अपने आलिंगन में भींच कर) भई बड़ी आयु है तुम्हारी। अभी अंजो कह रही थी कि श्रीपत...

अजली : श्रीपत, क्या कर रहे हो ? धूल और पसीने से तुम्हारे कपडे गच हो रहे हैं और तुम लिपटे जा रहे हो इनके साथ। चलो स्नान करो। कपडे बदलो ! सामान कहाँ है तुम्हारा ?

श्रीपत : अरे दीदी ! इतने वर्षों' बाद मिले है जीजा जी से, तो क्या अच्छी तरह मिलें भी नहीं (फिर लिपट जाता है) कहिए जीजा जी कैसे मिज़ाज हैं हुजूर के ? कसम आपकी, युग बीत गये आप से मिले। कहिए वकालत का क्या हाल है ? शक्ल से तो, कसम आपकी, आप जज दिखायी देते हैं। फौजदारी के वकील (अलग होकर, एक दृष्टि वकील साहब पर नख से शिख तक डाल कर, सिर हिलाते हुए) रत्ती भर नहीं। अंजो दीदी ने शायद......

अंजली : चाय ठंडी हुई जा रही है। चलो नहा लो। फिर बातें करना। सामान कहाँ है तुम्हारा ?

श्रीपत : सामान ही कौन सा है, बिस्तर पड़ा है बाहर बरामदे में।

अंजली : सामान नहीं, परन्तु . ...

श्रीपत : अरे आज कल सामान साथ लेकर चलने के दिन हैं ?

अंजली : पर कपडे.....

श्रीपत : एक अचकन, कुर्ता और पायजामा होगा, सो बिस्तर में बन्द है।

अंजली : (नौकर को आवाज़ देती है) राघू . राघू !

राघू : (बाहर से) जी मेम साहब ! (अन्दर आकर) जी !

अंजली : बाहर बरामदे में इनका बिस्तर पड़ा है, उठा लाओ। बाथ-रूम में नया तौलिया और साबुन रख दो। अलमारी से साबुन की नयी टिकिया ले लो। ये स्नान करेंगे।

श्रीपत : तुम भी बस दीदी . ...अभी चला आ रहा हूँ। पसीना तक सूखा नहीं और तुमने स्नान करने का नादिरशाही हुक्म जारी कर दिया। (कुर्ता उतार कर साथ की कुर्सी पर लटका देता है) ज़रा पंखा तेज कर दो दीदी, इंजन के धुएँ ने गर्द और गर्मी से मिल कर. . . .

अंजली : अरे......अरे......रे......क्या कर रहे हो श्रीपत ! तुम्हे

शर्म नहीं आती।? देखो, यहाँ अन्नो बैठी है और तुमने कुर्ता उतार कर फेंक दिया। नगे शरीर तुम्हे यहाँ बैठे...

श्रीपत : अरे दीदी! तुम तो व्यर्थ मे गृहस्थी की चक्की से अपना माथा फोड रही हो। तुम्हे किसी सैनिक कोर मे छोटी मोटी जूनियर या सीनियर कमांडर हो जना चाहिए।

अंजली : शिष्टता तो तुम्हे छू भी नहीं गयी। अन्नो बैठी है और तुम.... .

श्रीपत . (कुर्सी घसीटते हुए) इस समय तो मै कुर्सी पर बैठ रहा हूँ, तुम पखा तनिक तेज़ कर दो दीदी। यह पसीना न सूखेगा तो मै स्नान न कर सकूँगा (हँस कर अनिमा की ओर मुडते हुए) कहो अन्नो, तुम्हे तो जैसे युगों के बाद देखा है। मै तो, कसम तुम्हारी, पहचान भी न सका तुम्हें। सच कहना, क्या चन्द मिनट इस पंखे के नीचे मेरे बैठने पर तुम्हें कोई आपत्ति है? (अजली की आग्नेय दृष्टि को लक्ष्य करके) अरे दीदी! ऐसे देख कर रही है, मानो मैं कोई भारी पाप कर रहा हूँ। अभी कहेंगी (अजो की नकल उतारते हुए) स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे ....तुम्हें अपने स्वर्गीय नाना जी कसम दीदी, क्षण भर को बिलकुल उनका ध्यान छोड दो और पंखे की हवा तेज़ कर दो।

[मेज पर पाँव टिका कर आराम से कुर्सी पर बैठ जाता है।]

अंजली : मै कहती हूँ, तुम कितने गँवार हो। यह खाने की मेज़ ह और तुम यहाँ कपड़े, उतार पसीना सुखाने बैठ गये हो। कोई हद भी है तुम्हारी अशिष्टता की। स्वर्गीय नाना जी.........

श्रीपत : कहा करते थे कि श्रीपत बेहद गँवार आदमी है। खाने की मेज पर बैठ कर पसीना सुखाता है। मैं कहता हूँ दीदी, मैं इतनी मुद्दत के बाद यहाँ आया हूँ, तुम्हारा छोटा

भाई हूँ, तुम लोगों से मिलने का अरमान दिल में लिये, वर्षों से इस महान भारत के तूल-अर्ज में भटक रहा हूँ .. और तुम्हें मेरा पल भर को भी यहाँ बैठा सह्य नहीं। तुम्हारी कसम, मै जितनी देर यहाँ रहूँगा, एक पल के लिए भी आप लोगो को अपनी दृष्टि से ओझल न होने दूँगा।

अजली : यही तो मै कहती हूँ, तुम उठो, स्नान करो, फिर बैठ कर. ...

श्रीपत : मै कहता हूँ, ब्रह्मा का वाक्य और मेरा वाक्य एक बराबर है। मैने कहा न कि एक पल के लिए भी आप लोगों को अपनी दृष्टि से ओझल न होने दूँगा। स्नानागार में जाने की तो बात ही दूर रही।

अजली : (हताश भाव से) ठडी हो गयी चाय तुम्हारी बातों में।

श्रीपत . फिर गर्म हो जायगी (नौकर को आवाज देता है) राघू ! ओ राघू !!

राघू : (बाहर से) जी आया साहब !

श्रीपत : (हँस कर) कुछ क्षण ही बीते हैं मुझे यहाँ आये और कितनी जल्दी तुम्हारे नौकर का नाम मुझे याद हो गया है।

(अपने आप हँसता है)

अजली : क्या करेगा नौकर चाय का पानी गर्म करके ? . फिर ठडा हो जायगा। तुम स्नान तो कर लो।

श्रीपत : मैं कहता हूँ दीदी, चाय पीना भी कोई संध्या-वन्दन करना है कि स्नानादि की आवश्यकता हो। जरा गर्म-गर्म चाय का एक कप पिलाओ, जान में जान आय, स्नान की भी देखी जायगी।

अंजली : (घडी की ओर देखते हुए खीज कर) मैं कहती हूँ, नाश्ते का समय कब का हो गया और तुम हो कि . ...

श्रीपत : यही तो कहता हूँ। बस झट पट नाश्ता कर लिया जाय (ट्रे को अपनी ओर खींचता है) सब लोग मेरे लिए क्यो बैठे रहें ? भई आप सब तो नहा कर बैठे हैं, मै नहा कर न बैठा सही (सहसा वकील साहब की ओर मुड कर) क्यों जीजा जी, आपको कोई आपत्ति है ?

वकील साहब : (अजली की ओर देख कर और खंखार कर) मुझे .... ए ए

श्रीपत : और अन्नो तुम्हें......

अनिमा : (अजली की ओर देख कर झिझकते हुए) मै..... ऐं ... ऐं......

श्रीपत : तो लाइए, चाय पी जाय। मुझे, आप सब की कसम, सचमुच बडे जोरों की भूख लगी है। (तोस्त और बिस्कुट उठा कर खाते हुए) और नहाने में मुझे कम से कम एक घटा लग जायगा। मेरी आदत है कि या तो मै नहाता ही नहीं और नहाता हूँ तो महीनों की कसर एक ही दिन में निकाल देता हूँ। आप सब लोग बैठे रहेंगे मेरे लिए।

वकील साहब : (राघू से, जो इस सम्भाषण में चुपके से आकर हाथ बांधे आदेश की प्रतीक्षा में खडा है) राघू, तनिक चाय का पानी और लाओ ! गर्म, गर्म ! यह तो ठडा हो गया।

श्रीपत : और फिर मैं सोचता हूँ, गर्म चाय पीने से जितना पसीना निकलना है, निकल जाय। इसके बाद स्नान करूँ। इसलिए मैं सदा नहाने से पहले नाश्ता किया करता हूँ। (टिकज़ा उठा कर चायदानी को छूता है) चाय तो खूब गर्म है जीजा जी। राघू दूसरा पानी अलग टी-पाट में लाओ। (राघू जाता है, श्रीपत वकील साहब के प्याले में चाय ढालता है) आप दूध तो ज्यादा नहीं लेते ? (दूध डालता है) और चीनी ? .....

अजली : (आगे बढ़ कर क्रोध से) श्रीपत, तुम्हें टेबल-मैनर्ज का भी ज्ञान नहीं। हटो, मैं बनाती हूँ चाय।

श्रीपत : *ना दीदी, चाय तो मै अपनी सदा आप बनाता हूँ। तुम्हारी कसम, दूसरा कोई काम स्वय नही करता, पर चाय—मैंने प्रण कर रखा है कि या तो मेरी पत्नी आकर बनायगी, या फिर मैं ही. ...*

अंजली · (भाभी के आने की सम्भवना ही से जो प्रसन्न हो जाती है) *तुम करो भी शादी, लडकियाँ तो सहस्त्रों ...*

श्रीपत : (चाय की चुस्की लेकर) *अरे दीदी! विवाह की कल्पना में जो आनन्द है, वह विवाह में कहाँ?* (सहसा वकील साहब की ओर मुड कर) *जीजा जी से पूछ लो।*

अजली : *क्यों इन्हें क्या... .*

वकील साहब : *नहीं भाई मै तो.....*

श्रीपत : *वाह जीजा जी! आपको अपनी कसम, भगवान को साक्षी जान कर कहिए, विवाह की कल्पना में अधिक आनन्द है या विवाह में.? याद है न, मैं अजो दीदी की सगाई के सम्बन्ध मे आप से मिलने आया था। कितना हँसते थे आप, कितने ठहाके लगाते थे, कितनी बेपरवाही थी आपके स्वभाव में! जो जी चाहे खाते थे; जो जी चाहे करते थे; जहाँ जी चाहे जाते थे।* (हँसता है) *और अब...इतनी देर से बैठे है और एक ठहाका भी तो आपने नहीं लगाया। आपकी कसम, आप तो हाईकोर्ट के जज दिखायी देते है* (हँसता और चाय की चुस्की लेता है) *हालांकि अभी आप एडवोकेट भी नहीं बने . . .जब एक वकील जज नज़र आने लगे तो समझिए कि वह बुड्ढा हो गया। वकील तो यौवन प्रतीक है* (हँसता है) *और जज बुढ़ापे का। कसम आपकी जीजा जी,आपको विवाह ने बुड्ढा बना दिया है* (स्वय ही ज़ोर से ठहाका लगाता है और चाय पीता है) *और क्यों जीजा जी, अपना वचन तो आप नहीं भूले। पिछली बार जब हम मिले थे तो आपने कहा था कि एक बार फिर 'दिलकशा होटल' में.. .. ...*

वकील साहब : (इस बात से घबरा कर कि श्रीपत अपनी झोंक में कुछ और न बक दे, प्याला हाथ ही में लिये हुए उठ खड़े होते है) *लो भई, मुझे तो देर हो रही है। एक मामला है ज़रूरी। मै लंच पर आने का प्रयास करूँगा उसे निपटा कर। मेरी प्रतीक्षा करना।*

[हाथ के प्याले को एक ही घूंट में समाप्त करके मेज पर रखते हुए चले जाते है]

अंजली : *हैट तो अपना लेते जाइए।*

[उनके पीछे पीछे जाती है। श्रीपत चाय का दूसरा प्याला बनाता हुआ गुनगुनाना आरम्भ कर देता है।]

भरी बज़्म में राज़ की बात कह दी
बड़ा बेअदब हूँ, सज़ा चाहता हूँ।

[श्रीपत गुनगुना रहा है जब राघू दूसरा टी-पाट लाता है। उसे मेज पर रख कर चला जाता है। अनिमा उसमें से अपना प्याला बनाती है]

अनिमा : (अपने प्याले में चाय ढालते हुए) *मैं पूछती हूँ, क्या आप किसी प्रकार के शिष्टाचार में विश्वास नहीं रखते ?*

श्रीपत : (हँस कर) *किसी प्रकार के भी नहीं। शिष्टाचार विवाह का, यों कह लो, कि बंधन का प्रतीक है। उधर आपका विवाह हुआ और इधर आपके गले में शिष्टाचार का जुआ पड़ा। ये आपकी सास हैं—इनके सामने सिर नीचा किये शिष्टता से यों मुस्कराओ मानो आपकेसब दांत झड़ गये हैं। ये आपकी सलहज हैं—इनके सामने विनम्रता से ऐसे हँसो मानो आपकी बतीसी मोतियों की है। ये आपकी पत्नी हैं—आचार-व्यवहार, सदाचार और शिष्टता की मौसी!* (खूब ज़ोर से ठहाका मारता है) *मेरे विचार में आचार-व्यवहार के सभी नियम-उपनियम विवाहित लोगों के अधेड़*

दिमागो की उपज है। इसीलिए मै केवल विवाह की कल्पना ही करता हूँ, उसके बधन मे नहीं फँसता। (सहसा अनिमा की ओर मुड कर) क्यों अनो, क्या तुम भी शादी-वादी करना चाहती हो, या तुम्हे भी मेरी तरह विवाह के स्वप्न देखना ही पसन्द है ?

अजली : (वापस आते हुए तनिक क्रोध से) चलो अनिमा, चल कर ड्राइग-रूम में बैठें। चाय पी ली न तुमने ?

(अनिमा प्याले को एक ही घूट में समाप्त कर देती है)

— . (नौकर को आवाज देकर) राधू ! राधू !

राधू : (आँगन से) जी आया ! (अन्दर आकर) जी !

अजली : राधू, यह सब उठा कर ले जा... ..और मै कहती हूँ, मेज़ को भली-भाँति साफ कर दे।

[नीचे के सम्भाषण में राधू चुपचाप मालकिन के आदेश को पूरा करता है]

— : सारी चादर खराब कर दी तुमने श्रीपत। तुम तो बच्चो से भी गये गुजरे हो गये। नीरज अपनी मेज पर खाना खाता है, लेकिन मजाल है जो कभी मेज़-पोश खराब हुआ हो और तुम ऐसे हो कि . .. ...

श्रीपत : (अपना प्याला लिये हुए कुर्सी सरका लेता है कि राधू को काम करने में सुविधा हो) मैं कहता हूँ दीदी, तुम अवश्य सेना में भरती हो जाओ। गृहस्थी ने तुम्हारे सारे गुणों की मटियामेट कर दिया है।

अजली : हटो, और यह प्याला अब खत्म करो। इस ग़रीब को दूसरे भी काम देखने है। देखो घडी में क्या समय होने को आया है। चलो आओ उधर ड्राइग-रूम में चल कर बैठें। यहाँ राधू सफ़ाई करेगा।

(अनिमा उठती है)

श्रीपत : तुम चलो। मै जरा यही आराम करूँगा। गर्म-गर्म चाय

पीने से पसीना आ रहा है और पखे की हवा बदन में ठंडी ठडी सरसराहट पैदा कर रही है . . तुम्हारी कसम, मैं तो यहाँ से उठ कर जन्नत में भी न जाऊँ।

अंजली : *हम तो जाते हैं, तुम बैठो यहाँ जितनी देर तुम्हारी इच्छा।*

[राघू सामान उठा कर चला जाता है। श्रीपत कुर्ते की जेब से सिगरेट निकाल कर मुँह में रखता है। परन्तु दिया सिलाई कदाचित उसके पास नहीं। पुन जेबें टटोलता है। फिर राघू को आवाज देने वाला होता है कि नीरज अपने कमरे के दरवाजे से प्रवेश करता है।

नीरज दस ग्यारह वर्ष का बच्चा है। नीली बुश्शर्ट और श्वेत नेकर पहने, सुन्दर, सुकुमार और सुसस्कृत। परन्तु मुखाकृति उसकी गम्भीर है। बाल-सुलभ-चंचलता का वहाँ सर्वथा अभाव है। उसकी चाल उस बछड़े की सी है जिसने लगाम के साथ समझौता कर लिया हो]

नीरज : *मामा जी नमस्ते।*

श्रीपत : *आख.. हा! भानजे साहब हैं। नमस्ते, नमस्ते। कहो नीरू बेटे......नीरज ही हो न तुम?*

नीरज : *जी मामा जी?*

श्रीपत : (उसे बाहों में उठा कर) *अपने मामा जी के लिए दिया सिलाई की डिबिया तो लाओ बेटा!*

नीरज : *अभी लाया मामा जी।*

[श्रीपत उसे उतार देता है। वह दिया सिलाई की डिबिया लेने भाग जाता है। श्रीपत फिर कुर्सी पर बैठ कर टाँगें मेज पर रख लेता है, जिसे अभी राघू साफ करके गया है, और कुर्सी पर झूलता हुआ गुनगुनाता है।]

लट उलझी सुलझा जा रे बालम!
माथे की बिंदिया बिसर गयी है मोरी,
अपने हाथ लगा जा रे बालम!
लट उलझी सुलझा जा रे बालम!!

[नीरज दिया सिलाई की डिबिया लेकर आता है। कुछ क्षण खड़ा गाना सुनता है। फिर आगे बढ़ता है।]

नीरज : *लीजिए मामा जी!*

श्रीपत : *लाओ बेटे!*

[नीरज दिया सिलाई देकर आदर से एक ओर खड़ा हो जाता है। श्रीपत वैसे ही टाँगें मेज पर रखे दिया सिलाई जला कर सिगरेट सुलगाता है और बड़े आराम से कश खींचता है।]

नीरज : (पूर्ववत आदर से) *मामा जी, मेज़ पर टाँगें नहीं रखा करते।*

[सहसा श्रीपत की टाँगें नीचे आ जाती हैं, फिर वह तनिक चौंक कर नीरज की ओर देखता है और अनायास ठहाका मारता है।]

श्रीपत : (फिर टाँगें उसी प्रकार मेज पर रखते हुए) *किसने कहा तुम से?*

नीरज : *ममी कहा करती हैं मामा जी।*

श्रीपत : *वे तुम्हारे लिए कहती होंगी। तुम अभी बच्चे हो ना, जब तुम बडे होकर किसी के मामा बनोगे तो तुम्हें भी मेज़ पर टाँगे रख कर बैठने की आज्ञा मिल जायगी।* (फिर हँसता है) *कहो किस श्रेणी में पढ़ते हो?*

नीरज : *पाँचवीं में मामा जी!*

श्रीपत : *पढ लिख कर क्या बनना चाहते हो?*

नीरज : *डिप्टी कमिश्नर मामा जी!*

श्रीपत : डिप्टी कमिश्नर बनने की बात तुम्हे किसने सुझाई ?

नीरज : ममी ने मामा जी !

श्रीपत : तुम स्वयं क्या बनना चाहते हो ?

नीरज : मैं मै......मै तो मामा जी...

श्रीपत : यह तुम्हें हर वाक्य के साथ 'मामा जी,' 'मामा जी' कहना किसने सिखाया ?

नीरज : ममी ने कहा है कि बडो से बात करते समय आदर से

श्रीपत : तो हो चुके तुम डिप्टी कमिश्नर। इतने आदर से बात करोगे तो सरकार तुम्हे पटवारी बना देगी। अकड कर चला करो, रौब से बात किया करो और...

नीरज : मै तो कप्तान बनना चाहता हूँ मामा जी, पर . .

श्रीपत : कप्तान !

नीरज : क्रिकेट का कप्तान।

श्रीपत : क्रिकेट खेलते हो ?

नीरज : जी ममी कहती है, बडा निकम्मा खेल है, चोट लग जाती है।

श्रीपत . तो फिर तुम बन चुके क्रिकेट के कप्तान। कितने घंटे खेलते हो ?

नीरज : दो घंटे !

श्रीपत : और कितना पढ़ते हो ?

नीरज : छः घंटे !

श्रीपत : छः घंटे खेला करो और दो घंटे पढ़ा करो !

नीरज . जी मै पास कैसे हूँगा ?

श्रीपत पास होने के लिए प्रति दिन नियम-पूर्वक दो घंटे पढ़ लेना काफी है और फिर तुम पास होते रहना चाहते हो या क्रिकेट का कप्तान बनना ?

नीरज : कप्तान बनना !

श्रीपत : तो जाओ, रोज़ घंटे जम कर पढा करो और छः घटे डट कर खेला करो ! तुम्हारे मामा दुआ करते हैं कि भगवान् ने चाहा तो बडे होकर तुम अवश्य क्रिकेट के कप्तान बनोगे और भारत तो क्या, संसार में नाम पाओगे ।

नीरज : (गद्‌गद् होकर) मामा जी.... ...

(बढ़ कर श्रीपत से लिपट जाता है)

अजली . (दूसरे कमरे से) नीरज !

नीरज : जी ममी !

अंजली : (कमरे में प्रवेश करते हुए) यहाँ क्या कर रहे हो ? उधर चलो अपने कमरे में । पढने का समय हो गया है । अभी तुम्हारे मास्टर साहब आने वाले होंगे .....काम कर लिया कल का तुमने ?

नीरज : ममी, मैं तो खेलूंगा ।

अंजली : (क्रोध से) क्या—आ—आ ? (नर्मी से) चलो नीरू बेटे !

नीरज : छः घटे खेलूंगा और दो घटे पढ़ूंगा ।

अनिमा : (क्रोध से) क्या कहते हो ! (नर्मी से) चलो बेटा, तुम्हारे मास्टर साहब आने वाले हैं ।

नीरज : मैं क्रिकेट का कप्तान बनना चाहता हूँ ।

अंजली : (क्रोध को बरबस रोक कर नर्मी के साथ) पागल ! सिर पैर तुड़वायगा क्रिकेट का कप्तान बन कर ! तुझे तो डिप्टी कमिश्नर बनना है ।

नीरज : मुझे डिप्टी कमिश्नर नहीं बनना । मैं तो क्रिकेट का कप्तान बनूंगा ।

अजली : (क्रोध को रोक सकने में असफल होकर) चल चल, बन लिया क्रिकेट का कप्तान, अब चल कर पढ़ ! मास्टर साहब के आने का समय हो गया है ।

(उसे कान से खींचती हुई ले जाना चाहती है)

श्रीपत : अरे दीदी ! तुम तो नीरू बेटे का कान उखेड़-दोगी ।

अंजली : (जाते जाते मुड कर क्रोध से) *चुप रहो श्रीपत। तुम चाहते हो, मेरा बेटा भी तुम्हारी तरह आवारा हो जाय।* (फ़ुकारती हुई) *न काम के न काज के, अढ़ाई सेर अनाज के।*

[बिफरी हुई चली जाती है और जाते जाते मेज़ पर से दिया सिलाई की डिबिया उठा ले जाती है।]

श्रीपत : *अरे दीदी! तुम तो व्यर्थ गृहस्थी की चक्की में अपनी जान खपा रही हो। तुम्हें तो कहीं सेना में छोटी मोटी जूनियर या सीनियर कमांडर हो जाना चाहिए।*

[हँसता हुआ फिर कुर्सी पर आ बैठता है। पहला सिगरेट निकालता है, परन्तु डिबिया तो अजली जाते जाते साथ ले गयी है। इस लिए योंही जेबें टटोल कर रह जाता है।]

— : (अपने आप से) *पनाह है दीदी से भी। दिया सिलाई की डिबिया ही जाते जाते उठा कर ले गयी।*

(टाँगें मेज़ पर रख लेता है और नौकर को आवाज़ देता है)

— : *राघू, राघू!*

राघू : (दूर से) *जी आया!* (क्षण भर बाद आता है) *जी साहब!*

श्रीपत : *दिया सिलाई की डिबिया लाओ!*

राघू : *बहुत अच्छा साहब!*

(चला जाता है। श्रीपत गुनगुनाता है)

यह दस्तूरे-जबाँ-बन्दी है कैसा तेरी महफल में
यहाँ तो बात करने को तरसती है ज़ुबाँ मेरी!

[श्रीपत के गाने के मध्य पर्दा गिर जाता है। क्षण भर तक गाने की ध्वनि आती रहती है, इसके बाद निस्तब्धता छा जाती है।]

(कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है)

[श्रीपत डाइनिंग टेबल पर जूतों समेत सोया हुआ है। मेज की चादर गोला सा बनी उसके सिर का तकिया बनी हुई है। मेज क्योंकि इतनी लम्बी नहीं कि वह टाँगे पसार कर लेट सके, इसलिए उसकी एक टाँग दूसरे घुटने पर है, परतु दोनों टाँगें एक ओर को झुकी हुई हैं और पृथक हुआ चाहती हैं।

मेज के पास फर्श पर एक आधा जला सिगरेट पड़ा है। घड़ी में बाहर बज रहे हैं]

(पर्दा फिर गिर जाता है)

[कुछ क्षण बाद पर्दा उठता है। क्लाक में तीन बज चुके हैं। श्रीपत पूर्ववत सोया हुआ है, किन्तु सिर के नीचे की चादर फ़र्श पर पड़ी है और पाँव भी मेज़ के नीचे लटक रहे हैं। ड्राइंग रूम से अंजली और वकील साहब के बातें करने की आवाज़ आती है।]

अंजली : *आइए, अब दिखाऊँ श्रीपत को! डाइनिंग टेबल पर सोया हुआ है।*

वकील साहब : *डाइनिंग टेबल पर! तुम क्या कह रही हो?*

अंजली : *हाँ, हाँ, डाइनिंग टेबल पर! मैंने आपको इसलिए नहीं बताया कि प्रातः उसके कारण नाश्ते को नौ बज गये थे। अब यदि बहाना न बनाती तो लंच को चार बज जाते।*

(बातें करते हुए प्रवेश करते हैं)

वकील साहब : *अरे भई, तो इसे जगाया नहीं तुमने?*

अंजली : *जगाया, ऊँह!* (बेज़ारी से सिर हिलाती है) *मैंने तीन बार जगाने का प्रयास किया। एक बार 'उँ', 'ऊँ' करके सो गया। दूसरी बार केवल करवट बदली। तीसरी बार कंधों को झकझोरा तो बोला, "दीदी सो लेने दो। रात भर का जगा हुआ हूँ। थर्ड क्लास में यात्रा की है। पल भर को भी आँख नहीं लगी।"*

वकील साहब : *थर्ड-क्लास में!*

अंजली : *और हमारे नौकर तक इंटर-क्लास में जाते हैं।*

वकील साहब : *सेकिंड या इंटर में शायद स्थान न मिला हो।* (पास आकर) *देखो तो कैसे सो रहा है। कोई तकिया ही रख दिया होता इसके सिरहाने।*

अजल : *बिस्तर खोला था कि बिछाऊँ, देखती हूँ कि न चादर है न तकिया और वह अचकन और पायजामा, जिसका जिक्र बडे तमतराक से हो रहा था, ग़ायब है।*

वकील साहब . (लेटे हुए श्रीपत की ओर स्नेह तया दया-भरी दृष्टि से देखते हुए) *पर अपने तकिये तो थे।*

अंजली . *रखती कैसे, मेज़ की चादर रखी हुई थी तकिना बना कर सिरहाने। शायद करवट लेते समय गिर गयी। यह देखिए पड़ी है।*

वकील साहब : (मेज के पास जाकर श्रीपत को जगाते हुए)*श्रीपत, श्रीपत, उठो भई.. . ...*

[श्रीपत पहले करवट बदलता है, फिर एक लम्बी 'ऊँ—ऊँह !' करता है, फिर जमाही लेकर उठ बैठता है]

श्रीपत . (उलटे हाथ से आँखें मलते हुए) *अख़ाह! जीजा जी हैं। कहिए आ गये आप? मेरा खयाल है, मैं कुछ पल के लिए सो गया था।*

अजली . (मुँह बनाते हुए) *कुछ पल के लिए, पता भी है क्या टाइम हो गया है? तीन बज चुके हैं! ड्राइंग रूम में खाना खाया तुम्हारे कारण। यहाँ मेज़ पर तो तुम सोये हुए थे।*

श्रीपत : *सोचता था, नाश्ता करके ज़रा आराम के साथ दो एक सिगरेट सुलगाऊँगा, किन्तु ज्यों ही मेज़ पर टाँगे पसार कर सिगरेट पीने के मूड में बैठा कि नींद आ गयी। आप की कसम जीजा जी, वहीं कुर्सी पर नींद आ गयी और सिगरेट . ...*(अपने आस पास देखता है) *सिगरेट. .. वह देखिए पडा है ....ज़रा उठाना दीदी!...* (अजली एक बार सिगरेट की ओर देख कर फिर क्रोध से श्रीपत की ओर देखती है) *अरे दीदी! यह कोई साप तो नहीं जो तुम्हे काट खायगा।*

(अजली नहीं हिलती। श्रीपत नौकर को आवाज देता है)

— : राधू, राधू !

राधू : (अन्दर से) जी आया—या !

श्रीपत : (वहीं से चिल्ला कर) ज़रा दिया सिलाई की डिबिया लाना।

(वकील साहब सिगरेट उठा कर श्रीपत का देते हैं)

— : रात वास्तव में जीजा जी क्षण भर के लिए भी आँख नहीं लगी। कुर्सी पर बैठा कि ऊँघ गया।

वकील साहब . लेकिन तुम तो मेज़ पर .. .

श्रीपत : ये कमबख्त डाइनिंग टेबल की कुर्सियाँ..... ज़रा ऊँघ में एक ओर को झुका कि उलट गया।

वकील साहब : लेकिन भई बिस्तर बिछवा लेते।

(राधू प्रवेश करता है)

राधू . यह लीजिए दिया सिलाई की डिबिया साहब।

श्रीपत : (वहीं बैठे बैठे सिगरेट सुलगा कर उसका कश लगाते हुए) लेकिन मै इस मेज़ पर कैसे सो गया, यह मुझे स्वयं मालूम नहीं, शायद कुर्सी से गिरने पर नींद की झोंक में.........

अंजली : (कटुता से) अच्छी जगह निकाली है तुमने सोने के लिए।

श्रीपत : मैं वास्तव में कभी कभी सो जाया करता हूँ मेज़ पर। मै कहता हूँ दीदी। तुम्हें याद है ना, नाना जी की मृत्यु के बाद मैंने एक दैनिक निकालने की मूर्खता की थी। पत्र का मैनेजिंग डारेक्टर और सम्पादक भी मैं ही था। कई बार जब रात को लीडर लिखते लिखाते देर हो जाती, कसम तुम्हारी, पखे के नीचे वही मेज़ पर सो जाता। दूसरे दिन जब आँख खुलती तो बारह बजे की शिफ्ट काम पर आ चुकी होती (हँसता है) मैंने आदेश दे रखा था चपड़ासियों को कि मुझे सोते में कदापि न जगाया जाय।

(स्वय ही जोर से ठहाका मारता है)

अजली : तुम्हे नीद कैसे आ जाती है सख्त खुर्री मेज पर ?

श्रीपत : (हँसत हुए) तुम खूब जानती हो दीदी, तुम्हे मखमल के गदेलों पर नीद न आती थी और हम खुर्री चारपाई पर सो जाया करते थे। तुम्हारे कमरे के पास से भी कोई गुजरे तो तुम्हारी नींद उचट जाती है थी और हमारे कानों के पास यदि ढोल भी बजते तो हमे खबर न होती। तुम्हारी कसम, मै तो थर्ड में भी सो जाता, पर भीड कम्बख्त इतनी थी कि एक बार जाकर जो बैठा तो उठ कर कमर तक सीधी न कर सका।

अंजली : लेकिन ऐसी भी क्या विपद पड गयी कि सेकिंड छोड थर्ड में यात्रा करने लगे ? नाना जी का दिया क्या ...

श्रीपत : अब क्या बताऊँ दीदी, चला तो सेकिंड ही में था, पर मेरे डिब्बे में तो घोर सन्नाटा था। साथी मुसाफिर थे, पर मेरे लिए उनका अस्तित्व नही के बराबर था (हँसता है) दोनो योरोपियन, शायद अंग्रेज ! मुझ से तो क्या बोलते, बारह घंटे की यात्रा में कम्बख्तों ने आपस मे भी नजर तक न मिलायी। मै तो ऊब गया वहाँ बैठे बैठे ! तभी एक स्टेशन पर, न जाने वह कौन सा स्टेशन था छोटा सा. ...किसी कस्बे का स्टेशन . . .अब क्या कहूँ दीदी, कैसी छबि दिखायी दी ! कसम आपकी जीजा जी, बला की सुन्दर थी वह लडकी। नगरों का सौन्दर्य भी देखा है आपने (शरारत से हँसता है) पीला और बीमार ! जिसे खाने की वेला का इतना ध्यान रहता है कि खाना ही नहीं पचता... . और एक वह लड़की थी. कुन्दन की भाँति दमकता हुआ रंग और यौवन का उभार . . कसम आप की जीजा जी, पूर पर आयी हुई नदी का ज्वार .....

(जोश में मेज से नीचे उतर जाता है)

अंजली : (इस अश्लील बातचीत में अपने पति की दिलचस्पी देख कर जिसके तेवर चढ जाते हैं—क्रोध से) मै पूछती हूँ, आप श्रीपत

की गन्दी बातें ही सुनते रहेंगे या आराम भी करेंगे। खाना खाया है, अब आराम कीजिए। फिर आपको जाना होगा।

वकील साहब : (घबरा कर) चलो, चलो.... !

श्रीपत : (ठहाका लगाता है) वाह, जीजा जी ! आप पर भी अजो दीदी का जादू चल गया। अजी साहब, यदि आपका जी बातें सुनने को करता है तो बाते सुनिए, सोने को चाहता है तो सोइए।

अंजली : चलिए ! मै कहती हूँ, इसकी बातें कभी खत्म न होगी। स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे कि आराम की वेला .. .

श्रीपत : आराम करना चाहिए ! अरे दीदी, कभी समय नियत करके भी आराम किया जा सकता है। आराम किया जाता है जब आराम को जी चाहे। जीजा जी के सोने का समय है और मै सोकर उठा हूँ, सुला कर देख लो हमें साथ साथ, कौन अधिक सोता है।

(ज़ोर से ठहाका मारता है)

अंजली : अच्छा हम चलते हैं। तुम उठो और नहा कर खाना खा लो। आराम का समय है, नौकर भी कुछ आराम कर लें। (पति से) चलिए।

वकील साहब : तुम बिस्तर बिछवा दो अंजो, मैं आता हूँ।

अजली : बिस्तर तैयार है।

वकील साहब : (वकील है न आखिर) तो पंखा रखवा दो और राघू से कहना कि खस की टट्टी पर तनिक पानी छिडक दे। कमरा ठडा न हुआ तो मुझे नींद न आयगी।

अजली : (जाते हुए) जल्दी आ जाइएगा। फिर आपको जाना होगा न चार बजे।

(चली जाती है)

श्रीपत : (बढ कर वकील साहब के कधे का थपथपाते हुए) मै कहता हूँ, क्या हो गया जीजा जी आपको ? कसम आपकी, आप तो बिलकुल बदल गये। क्या तिलांजली दे दी जीवन के रस रग को आपने ?

वकील साहब : (दीर्घ-निश्वास भरते हुए, कधे झटका कर) अरे भई, समझौता करना ही पड़ता है जीवन में .. !

श्रीपत : समझौता ही किया है न आप ने ? (शरारत से आँख दबाते हुए हँसता है) समझौता अवश्य करना चाहिए ! तो फिर 'दिलकशा' के वचन का क्या रहा ? एक साँझ तो गुज़ारी जाय वहाँ। आज मेरे चन्द मित्र आ रहे हैं वहाँ शाम को।

वकील साहब : नहीं भाई मैने तो ....

श्रीपत : अरे जीजा जी ! अब मुझ से न उड़िए। फौज़दारी के वकील और पारसाई ? (हँसता है) मुझ से समझौता नहीं हो सकता। इतने वर्षों के बाद भेंट हुई है आप से।

वकील साहब : लेकिन भई अजो .

श्रीपत : उसे आप समझाइए, निकालिए कोई तरकीब।

वकील साहब : (कुछ और समीप होकर भेद-भरे स्वर में) लेकिन भई उस लड़की का क्या हुआ ?

श्रीपत : किस लड़की का ?

वकील साहब : अ-भई, वही जो तुम्हे किसी स्टेशन पर मिली थी और जिस के लिए तुम थर्ड के डिब्बे में ....

श्रीपत : (हँस कर) अरे जीजा जी ! बस तो जब मैने उसे देखा, अपना डिब्बा छोड कर उस के डिब्बे में जा सवार हुआ ...

(अजली हाथ में एक श्वेत चादर लिये आती है)

अंजली : (चादर मेज पर बिछाते हुए) आप अभी तक यही बातें कर रहे है। मै कहती हूँ, चल कर कुछ आराम कर लीजिए। फिर आप को जाना होगा। और. . .

वकील साहब : (घबरा कर) अरे भाई चलो ...चलो, (उसके पीछे चलते हुए) चलो !

(दोनों चले जाते है)

श्रीपत : (अपने आप हँसता है) इस घर के लोग भी पुर्ज़े है, मशीन के पुर्ज़े !

[कुर्सी घसीट कर बैठ जाता है और टाँगें मेज पर रख लेता है। मुन्नी प्रवेश करती है]

मुन्नी : जी आप खाना खा लीजिए। कब से पड़ा ठंडा हो रहा है।

श्रीपत : आप......आप.. ...मेरा मतलब है कि आप से मेरा परिचय नही। आइए बैठिए कुर्सी पर......

मुन्नी : जी मै यहाँ नौकरानी हूँ।

श्रीपत . खूब ! (ठहाका मारता है) और मैं समझा तुम अंजो दीदी की कोई ननद-वनद हो। क्या नाम है तुम्हारा ?

मुन्नी : जी मुझे मुन्नी कह कर पुकारते हैं।

श्रीपत . अरे मुन्नी तो नन्हीं-मुन्नी सी लड़की को कहते है और तुम तो कसम तुम्हारी, अब नन्हीं-मुन्नी नहीं रही हो। आओ जरा बैठो।

[टाँगे मेज के नीचे कर लेता है। मेज पर कोहानियों टिकाकर मुँह हथेलियों पर रख लेता है]

मुन्नी : जी आप खाना खा लीजिए।

श्रीपत : अजी खाने का क्या है, खाये लेते हैं। तुम ज़रा बैठो......

मुन्नी : आप खाना खा लीजिए, हम लोगों के आराम का समय है।

श्रीपत : आराम का समय ! कसम तुम्हारी, मैं तो पागल हो जाऊँगा। इस घर में जिसको देखो, उसके आराम का समय है। किसी नपे-तुले समय में आराम भी किया जा सकता है कभी ? . यदि मुझ से कहा जाय कि अब एक बज गया है, तुम्हारे सोने का समय है, सो जाओ ताकि दो बजे उठ सको, तो कसम तुम्हारी, मेरी पलकें भी भारी न हों। मेरे कानों मे एक ही बजे दो बजने लगें। नींद आती है जब आती है। चाहने पर कभी नहीं आती। क्यों मुन्नी, तुम्हें बँधे समय का यह आराम पसन्द है ?

मुन्नी : जी मै .

श्रीपत : और हमारे घर में किसी प्रकार का बन्धन नहीं। वास्तव में स्वर्गीय नाना जी ने अजी दीदी के मस्तिष्क को जकड रखा है। वे थे भी डिक्टेटर। सदा अपनी राय दूसरों पर लादा करते थे ... .हमारे घर में ऐसा करना महापाप समझा जाता है। कसम तुम्हारी, तुम चार दिन हमारे घर में रह कर तो देखो। कितनी स्वतन्त्रता है वहाँ। दिन के हर समय तुम्हें वहाँ कोई न कोई नौकर सोता हुआ मिलेगा। (हँसता है) जब मालिक सोते है तो नौकर क्यों न सोयें।

मुन्नी : जी आप खाना खा लीजिए।

श्रीपत : मै कहता हूँ कसम तुम्हारी, ममी तुम्हें बड़ा पसन्द करेंगी। मैं अजो दीदी से तुम्हें माँग लूँगा।

मुन्नी : (लटकते हुए से कृतज्ञता भरे स्वर में) जी आप की कृपा है। आप खाना.. ..

अजली : (ड्राइङ्ग रूम से) मुन्नी ! तुम क्या कर रही हो यहाँ ? (प्रवेश करते हुए) चलो जाकर आराम करो। फिर तुम्हें साँझ के नाश्ते का प्रबन्ध करना होगा। आज लंच ही की इतनी देर हो गयी।

मुन्नी : मेम साब, मैं साब को खाना. .

अंजली : तुम जाओ, मैं खाना देती हूँ इनको ।

मुन्नी : आप आराम कीजिए मेम साब .

अजली : मै जो कहती हूँ, तुम जाओ आराम करो । मै देती हूँ खाना ।

मुन्नी : बहुत अच्छा मेम साब ...

(विवश चली जाती है)

अजली . सदाचार तो तुम्हें छू भी नहीं गया श्रीपत । मेरी नौकरानी पर ही डोरे डालने लगे ।

श्रीपत : अरे दीदी ! नौकरानी तो तुम्हारी बस ग़जब की है । मेरी कसम, इसे भेज दो मेरे साथ ।

अंजली : शर्म तो नहीं आती श्रीपत । न बहन का ख्याल न बहनोई का, न सदाचार न शिष्टता का । यही सिखाया है तुम्हें ममी और पापा ने । मै तो भगवान को धन्यवाद देती हूँ कि स्वर्गीय नाना जी ने मुझे गोद ले लिया नही....

श्रीपत : तुम्हें स्वर्गीय नाना जी की कसम दीदी, इस नौकरानी को मेरे साथ भेज दो ।

अंजली : (चिढ़ कर) उठो श्रीपत, अभी जी नही भरा तुम्हारा इतना समय गँवाकर .. . ? चलो उठो, नहा लो । नहीं नहाते तो हाथ मुँह धो लो ।

श्रीपत : न मानो दीदी । ऐसी बनी-संवारी नौकरानी रखोगी तो जीजा जी कभी दिल दे बैठेंगे । आदमी हैं न आखिर बेचारे ।

अंजली : अच्छा उठो यहाँ से । मेज़ की चादर तो बदल दूँ । अभी बदल कर गयी थी कि तुमने फिर जूते टिका दिये इस पर ! मैं पूछती हूँ, तुम ने अभी तक यह भी नहीं सीखा कि डाइनिंग टेबल की चादर पर जूते नहीं रखे जाते ..... और चादर मेज़ पर बिछाने के काम आती है, तकिया बनाने के नहीं (बडी नर्मी से) उठो, मैं लाती हूँ नई चादर । तुम इतने में तैयार हो जाओ ।

[चादर उठाकर चली जाती है। श्रीपत फिर मेज पर टाँगें रख लेता है और गुनगुनाता है :—]

उम्मीद तो बँध जाती, तस्कीन तो हो जाती,
वादा न वफा करते, वादा तो किया होता।

[अपने मामा को गाते सुन कर नीरज अपने कमरे से दबे पॉव आता है]

नीरज : (सरगोशी में) *मामा जी !*

श्रीपत : *आओ बेटे। क्या समय पर आये हो। सुनो हम गा रहे है।*

(गाता है)

नाकामे-तमन्ना दिल इस सोच मे रहता है।
यों होता तो क्या होता, यो होता तो क्या होता!

— : *क्यों बेटे, पसन्द आया हमारा गाना ?*

नीरज : *आप बहुत अच्छा गाते हैं मामा जी। और सुनाइए।*

श्रीपत : *बस बेटे। नही तुम चाहोगे कि क्रिकेट के कप्तान बनने के बदले गवैये बनो।*

(दोनों हँसते है)

नीरज : *मामा जी आप सोये नही ?*

श्रीपत : *अभी सोकर उठा हूँ।*

नीरज : *मै सोया था, पर नींद नही आयी। मामा जी, आप तनिक ममी से कहिए, मुझे क्रिकेट खेलने की आज्ञा दे दें।*

श्रीपत : (उसे गोद में उठाते हुए) *मै अवश्य कहूँगा। तुम्हारी कसम, मैं यहाँ से जाते ही क्रिकेट का सारा समान तुम्हें भेजूँगा—बैट, विकिटें, बाल—सब! तुम प्रति-दिन खेलना और अपने इन मामा जी के हक में दुआ करना। क्यों नीरज, याद रखोगे न अपने मामा जी को ?*

नीरज : (श्रीपत के गले से लिपट जाता है) *मामा जी !*

अंजली . (दूसरे कमरे से) नीरज क्या कर रहे हो तुम यहाँ ? (चादर लिये हुए प्रवेश करती है) तुम्हारे तो सोने का समय है। सोये नहीं तुम क्या ?

नीरज : नींद नहीं आती ममी !

अंजली : (मेज पर चादर बिछाते हुए) चल कर लेट, आ जायगी। स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे कि नींद न आय तो भी खाना खाने के बाद कुछ देर लेटना चाहिए। चलो, अपने कमरे मे चल कर आराम करो और श्रीपत, तुम अभी तक यहीं बैठे हो, जाओ बाथ-रूम में सब कुछ रखा हुआ है। नहा लो यदि नहाना है, नहीं तो मुँह-हाथ धो डालो। मै खाना लाती हूँ।

श्रीपत . मुझे खाने की बिलकुल इच्छा नहीं दीदी !

अंजली : तो फिर क्या खाओगे ?

(बाहर खोंचे वाला आवाज़ देता है)

खोंचेवाला : चाट चट-पटी मसालेदार ! पानी के बताशे, दही-बड़े !

श्रीपत : मै तो, कसम तुम्हारी, दही-बडे खाऊँगा।

खोंचेवाला : (बाहर) दही के बडे !

श्रीपत : क्यो नीरज खाओगे दही-बडे ?

नीरज : (चुप)

श्रीपत : आओ, तुम्हे दही-बडे खिलायें।

(ड्राइंग-रूम के दरवाजे में जाकर आवाज़ देता है)

— : ओ चाट वाले, ला इधर दही-बडे और चाट !

नीरज : ममी......!

[अजली का आचल थाम लेता है। अजली उसका हाथ झटक देती है]

श्रीपत : (मुडकर) अरे दीदी ! इस कोप-दृष्टि से बच्चे को ओर क्यो देख रही हो। मैं कहता हूँ, सब खायेंगे दही-बडे

(फिर मुडकर जोर मे आवाज देता है) ओ दही-बड़े वाले ! इधर लाओ दही-बडे और पानी के बताशे !!

अजली : श्रीपत रहने दो, इसका पेट खराब हो जायगा।

श्रीपत : यदि तुम ने बचपन ही मे इसका पेट ऐसा कमजोर बना दिया तो कसम तुम्हारी दीदी, बडे होते न होते अवश्य खराब होकर रहेगा।

अजली : मै पूछती हूँ, दही-बडे भी कोई खाने की चीज़ है ?

श्रीपत : उसके पास पानी के बताशे और मूँगी के लड्डू भी है। चटपटे और मसालेदार ! (नौकर को आवाज़ देता है) राघू राघू . !

राघू : (बाहर से) जी साब ! (अन्दर आकर) जी।

श्रीपत : खोचेवाला बैठा है बाहर। उससे पानी के बताशे और दही-बडे लाओ ! (अजली से) आओ दीदी, उडायें दो दो ! राघू से, जो जाने को मुडता है) और सुनो ! मूँगी के लड्डू भी ले आना अजो दीदी के लिए।

(राघू चला जाता है)

अजली : मुझे नहीं खाने मूंगी के लड्डू और पानी के बताशे। स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे कि चाट ...

श्रीपत : सख्त बुरी चीज़ है ! परन्तु दीदी कभी कभी बुरी बात भी कर देखनी चाहिए। बहुत भलाई को भगवान पसन्द नहीं करता (हँसता है) जिस प्रकार सुन्दर बच्चों को कुदृष्टि से बचाने के लिए उनके माथे पर काला टीका लगा दिया जाता है, उसी प्रकार अपनी भलाई को बुरी-दृष्टि से बचाने के हेतु मै भी कभी-कभार ऐसी वैसी बुरी बात कर लिया करता हूँ। तभी तो आज भी मेरी भलाई......

अजली : (व्यग्य से) भलाई ! (तिक्त मुस्कान उसके ओंठों पर फैल जाती है) क्या बात है तुम्हारी भलाई की ? तुम्हीं को मुबारक हो यह भलाई !

वकील साहब : (ड्राइंग-रूम के दरवाजे से झाँकते है) भई क्या बात है ? (पास आकर) झगड़ क्यों रहे हो ? (श्रीपत की ओर देख कर शरारत से आँख दबाते है) मै तो सो ही गया था अंजो । तुम्हारे ज़ोर ज़ोर से बोलने की आवाज़ सुनी तो चला आया ।

अजली श्रीपत नीरज को दही-बडे खिला रहा है ।

श्रीपत · आइए जीजा जी, दही-बडे बिकने आये है, पानी के बताशे है और चाट । आइए कुछ ..

वकील साहब : भई मैने तो छः वर्ष से कभी चाट को मुँह नहीं लगाया......

अनिमा : (हँसती हुई प्रवेश करती हैं) मात्र दोने देखे है !

श्रीपत : भई क्या खूब अवसर पर आयी हो अन्नो । तुम्हारी कसम, दही-बडे आये है—फर्स्ट क्लास ! जीजा जी ने भी छः वर्ष से चख कर नहीं देखे और मुझे भी, भगवान झूठ न बुलवाये, वर्षों हो गये हैं उनकी सूरत देखे......आओ बैठो (राघू को आवाज देता है) राघू, अब ले भी आ दही-बडे ।

अनिमा : मै नही खाती दही-बडे ।

(बाहर से कुलफी वाले का स्वर आता है)

कुलफी वाला : कुलफ़ी मलाय का बर्फ !

श्रीपत : लो कुलफी खाओ ! तुम्हारी कसम, कुलफी हो, फिर ऊपर से मलाई वाली हो तो और क्या चाहिए । (ज़ोर से राघू को आवाज देता है) राघू बैठाइयो कुलफी वाले को ! किसी ने कहा है—भिन्नता जीवन के लिए रस का काम देती है—तो आये ! जो चाहे कुलफी खाय, जो चाहे दही-बडे और जो चाहे पानी के बताशे और चाट ! (सहसा वकील साहब की ओर मुड कर) कहिए जीजा जी, क्या खायँगे ? ....रुकिए नही ....हाँ ... हाँ......कह दीजिए . ... !

[राघू एक बड़े थाल में सभी चीजों की प्लेटें रख कर ले आता है। श्रीपत उससे लेकर रखता है]

वकील साहब : (प्रकट उदासीनता से) मै पानी के बताशे ही ले लूँगा।

श्रीपत : तुम नीरज ?

नीरज : मै कुलफी लूँगा।

अजली : फिर पडे रहोगे बीमार पेचिश से कई दिन।

श्रीपत : (अजो की बात को सुनी-अनसुनी करके) तुम अन्नो ?

अनिमा : मैं मूगी के लड्डू लूँगी।

श्रीपत : अरे, मुन्नी और दूसरे नौकरो को भी बुलवालो। इस घर में तो उन्हे भी युग बीत गये होगे इन चीजो की शक्ल देखे। (सहसा अजो की ओर मुडकर) कहो दीदी, तुम कुलफी लोगी, दही-बडे खाओगी, मूगी के लड्डू, चाट या सभी चीजें ?

अजली : (जलकर लगभग चीखते हुए) स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे—ससार मे तीन प्रकार के जीव होते हैं। एक वे जो आप भी चलते है और दूसरो को भी चलाते है—इंजन की भॉति ; दूसरे वे, जो आप नही चलते, पर चलाओ तो चले जाते है—गाड़ी के डिब्बों की भॉति ! और तीसरे वे, जो न आप चलते है, न दूसरो को चलने देते है—ब्रेक की भॉति ! स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे—श्रीपत ब्रेक है, ब्रेक !!

श्रीपत : (गगन-भेदी ठहाका लगाता है) वाह दीदी ! लाख रुपए की बात कही है। (थाल से कुलफी की प्लेट उठाता है) लो इसी बात पर कुलफी खाओ !

अजली : मै नहीं खाती कुलफी।

श्रीपत : लो नीरज, तुम लो कुलफी। दीदी पानी के बताशे लेंगी। (ट्रे से पानी के बताशों की तश्तरी लेकर) लो दीदी पानी के बताशे !

अंजली : मुझे नहीं चाहिएँ पानी के बताशे।

श्रीपत : लीजिए जीजा जी, आप पानी के बताशे। दीदी मूंगी के लड्डू लेंगी। (ट्रे से मूँगी के लड्डू उठाकर) लो दीदी मूंगी के लड्डू !

अजली : रखो ये मूगी के लड्डू अपने ही पास। मै इनके बिना भली।

श्रीपत · (अजली की चिढचिढाहट की ओर ध्यान दिये बिना।) लो अन्नो, तुम लो यह मूंगी के लड्डू। दीदी का जी वास्तव में दही-बडे खाने को हो रहा है, (दही के बड़े उठाता है) लो दीदी, दही-बडे। मसाला भी देखो कैसा चटपटा है।

अजली : (क्रोध से चिल्ला कर) श्रीपत तुम्हें शर्म नहीं आती

श्रीपत : तुम्हारी इच्छा दीदी। दही-बडे फिर हमी खाये लेते हैं।

(दही-बडा मुँह में रख लेता है)

अंजली : (अपने पति से) मै कहती हूँ, आप मस्त होकर पानी के बताशे उडा रहे हैं, कुछ ध्यान भी है अब समय क्या हो गया—चार बजने को हैं !

श्रीपत : (चौक कर) क्या कहा ? चार बजने को हैं ! (दही-बड़े की तश्तरी खट से रख देता है) मेरा .. मेरा कुर्ता कहाँ है ?

(जल्दी-जल्दी कुर्ता कुर्सी से उठा कर पहनता है)

वकील साहब : क्यो, क्या बात है ?

श्रीपत : मुझे चार बजे 'दिलकशा' पहुँचना है। मेरे मित्र वहाँ पहुँच रहे है। राघू ! मेरा बिस्तर उठाओ। ताँगा मार्ग ही में पकड लेंगे।

[दूसरा दही-बडा उठा कर मुँह में रख लेता है, राघू चला जाता है]

अजली : पर बिस्तर क्या करोगे ?

श्रीपत : उधर ही से स्टेशन पर पहुँच जाऊँगा। सात बजे की गाडी चढना है मुझे।

अंजली . बिस्तर तो मैने खोल दिया।

श्रीपत · अच्छा तो राघू के हाथ भिजवा देना 'दिलकशा होटल' में।

अजली · गन्दा था, पानी के टब मे पड़ा है।

श्रीपत : (ठहाका लगाता है) अरे दीदी ! खैर, जब धुल जाय तब भिजवा देना। अब तो मै चलता हूँ।

अजली : मुझे क्या मालूम था कि तुम झन्झा की भाँति आओगे और तूफान की तरह चले जाओगे।

श्रीपत . (हँसता है) भगवान ने चाहा तो मै फिर आऊँगा अजो दीदी ! और धूल की तरह टिक कर बैठूँगा। नमस्कार !

(हँसता हुआ दोनों हाथ मस्तक तक ले जाता है)

अंजली . अरे तो राघू कहाँ है। उससे कहो ताँगा लाय।

[आगन के दरवाजे से निकल जाती है। वकील साहब श्रीपत को एक ओर ले जाते हैं]

वकील साहब : (उसके कधे का एक हाथ से थपथपाते हुए, सरगोशी में) क्यों भई, सचमुच जा रहे हो ?

श्रीपत : (सरगोशी में) अरे जीजा जी, आज कौन जाता है। रात तो 'दिलकशा' में कुछ आमोद-प्रमोद रहेगा। कहिए चलिएगा।

वकील साहब . अच्छा भई बडे गुरु निकले ! और दही-बडे की प्लेट यों खट से रख दी मेज पर जैसे बडे लाट से मिलने जा रहे हो (और भी धीरे से) कहो कुछ वह भी

श्रीपत और अजो दीदी समझती है बडे बरखुरदार किस्म के पति है आप...

वकील साहब : अरे भई समझौता करना ही पड़ता है। तुम आ गये हो नहीं। (दीर्घ निश्वास लेकर) हम और आर्जुए-विसाले-परी-रुखां .. .

(अंजली प्रवेश करती है)

अंजली : (आते आते) लीजिए आ गया तांगा। खाली जा रहा था, आवाज देकर बुला लिया।

वकील साहब . ऐ-हुम ! अंजो, मै तनिक श्रीपत को स्टेशन तक पहुँचा आऊँ ?

अंजली : हाँ, तो देर करके न आइगा।

नीरज : मामा जी !

श्रीपत : हम नीरज बेटे के लिए क्रिकेट का सामान भेजेंगे। दीदी, इसे क्रिकेट खेलने की आज्ञा दे दो ! बडा होकर क्रिकेट का कप्तान बनेगा (अनिमा की ओर मुड कर) अन्नो, मुद्दत के बाद मिलें थे लेकिन . . (हसता है)......अबके फिर मिले तो आशा है तुम भी अंजो दीदी की भाँति हमारे एक और जीजा जी को बांधे हुए होगी (स्वय ठहाका मारता है) और अंजो दीदी नमस्कार। दुआ है कि स्वर्गीय नाना जी का जादू तुम्हारे सिर से उतरे और तुम भी देखो कि चाट आखिर कोई ऐसी बुरी चीज नहीं (ठहाका मारता है) चलिए जीजा जी !

नीरज : मामा जी नमस्कार !

[लेकिन नीरज का स्वर राघू, मुन्नी और अन्नो के "नमस्कार" में डूब जाता है। श्रीपत वकील साहब के साथ सब के नमस्कार का उत्तर देता हुआ निकल जाता है]

नीरज : (प्रसन्नता से उछल कर) मामा जी हमारे लिए क्रिकेट का सामान भेजेंगे ?

अंजली : (क्रोध से मुड कर) चल हाथ धो और पुस्तकें लेकर बैठ ! भेजेंगे तुम्हारे लिए क्रिकेट का सामान। गणित के मास्टर साहब आने वाले होंगे।

नीरज : ममी !

अजली : मै कहती हूँ चल। लेके बैठ, गया कुलफी खाने। जैसे कभी मिली ही न हो कोई चीज खाने की। अन्नो, तुम ज़रा इसके हाथ धुलाना और बैठाना इसे पढने की मेज पर (कमरे में चारों ओर दृष्टि-निपात करती है) क्या हाल हो गया चन्द घटों में कमरे का ? (नौकर को आवाज देती है) राधू, राधू ! (सिगरेट के एक टुकड़े को जो फ़र्श पर पडा सुलग रहा है, जाकर पाँव से मसल कर बुझाती है) चन्द दिन और रह जाता तो मै सच ही जाकर सेना में भरती हो जाती— अभी चादर बदली थी और अभी गदी कर दी। (फिर चीख कर नौकर को आवाज देती है) राधू !

राधू : (आते हुए) जी मेम साब !

अंजली : उठा ये सब चाँट दही-बडे और मूंगी के लड्डू, तुम और मुन्नी खा लेना ! और यह मेज साफ कर, चादर लाकर बदलू, चाय का समय हो गया।

[राधू चुपचाप सामान उठाने लगता है, अँजली की दृष्टि घडी पर चली जाती है]

— . (चौक कर) अरे, यह घडी रुक गयी। राम राम राम, मै भी चाबी देना भूल गयी। दस वर्ष से नियमित रूप से इसे चाबी देती आ रही हूँ। स्वर्गीय नाना जी कहा करते थे— श्रीपत ब्रेक है ब्रेक !

[मेज को दीवार के साथ करके उस पर चढ कर घडी को चाबी देती है]

— : मेरे घर में ब्रेक का क्या काम ? मेरा घर इसी घडी की भाँति चलेगा। निरन्तर, साँझ सवेरे !... (घडी टिक टिक करने लगती है) टिक . टिक, टिक... टिक ! और कोई चीज इस नियम को तोड न सकेगी। (सहसा घडी की टिक टिक बन्द हो जाती है) अरे, यह फिर खडी गयी ! राधू ...राधू !

[राघू जो सामान समेट कर जाने को होता है, अपनी मालकिन की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से तकता है]

अंजली : *घड़ी टूट गयी राघू। शायद मैने इसे ज्यादा चाबी दे दी!*

[अंजली दोनों हाथ उठाये परेशान सी मेज पर खड़ी है जब पर्दा गिर जाता है]

भँवर

पात्र

प्रतिभा	जगन
प्रतिमा	ज्ञान
प्रमिला	हरदत्त
नीलिमा	दीनू
नीहारिका	दर्जी
मन्दा	निर्मल

[पर्दा प्रतिभा के अपने कमरे में उठता है। यह कमरा ड्राइंग-रूम भी है और स्टडीरूम भी और बाहर जाते जाते मेक-अप पर एक दृष्टि डालने के हेतु इस में एक शृगार-मेज भी रखी है।

बैठने के लिए कौच का मूल्यवान सेट और पढने के लिए एक सुन्दर मेज-कुर्सी सजी है। मेज पर एक ओर टैलीफ़ोन रखा है और दूसरी ओर कुछ पुस्तकें रैक में बड़े सुरुचि-पूर्ण ढग से चुनी हुई है। शृगार मेज का दर्पण आदमी के कद का है और लकडी चमचमाते टीक की। छत पर बिजली का पखा मन्थर गति से चल रहा है।

कमरे में तीन दरवाजे और एक खिडकी है। दो दरवाजे दायीं दीवार में है। इधर का (दर्शकों की ओर का) बाहर बरामदे में और कोने का प्रतिभा के शयन कक्ष में खुलता है। सामने की दीवार के बायें कोने में एक दरवाजा है जो आँगन को जाता है। बायीं दीवार में एक बडी खिडकी है जिसके पट बाहर को खुलते है।

सामने दीवार में अगीठी है जिस पर दो फूलदान और कुछ फ़ोटो सजे है। दरवाजों पर भारी पर्दे लटक रहे है जिनका रग मेजपोशों, अगीठी के कपड़े, टेबल लैम्प के कवर और कौचों तथा दीवारों के रग से मिलता है।

प्रतिभा २४, २५ वर्ष की सुन्दर युवती है। न बहुत लम्बा न छोटा कद, सुगठित देह, गौर वर्ण और कुछ विचित्र आकर्षण वाली सालस, लालस आँखें। एम० ए० में पढती थी तो उसे अपने दर्शन अध्यापक प्रो० नीलाभ से प्यार हो गया था। किन्तु प्रेम की वह सुलगती चिगारी कभी ज्वाला न बनी, क्योंकि अध्यापक नीलाभ प्रेम के सम्बन्ध में बहुत पहले विरक्त हो चुके थे। अपने अध्यापन जीवन के आरम्भ में उन्होंने अपनी एक छात्रा से विवाह कर लिया था।

अनुभव इतने कटु थे कि उस बधन से मुक्ति पाने के पश्चात् विवाह तो दूर, वे एक प्रकार से नारी मात्र से विरक्त हो गये थे, यद्यपि उनकी यही विरक्त उनका आकर्षण बन गयी थी।

उस ओर मार्ग न पाकर प्रतिभा के प्रेम की धारा पलटी तो अपने ही सहपाठी सुरेश की ओर बह चली। सुरेश बहुत देर से उसके प्रेम का याचक था। टैनिस का माना हुआ खिलाडी, सम्पन्न और सुन्दर! पहले प्रतिभा उसे प्रश्रय न देती थी, अब अपनी असफलता में वह मुडी तो द्विगुन वेग से उसकी ओर बढी और उसने तत्काल उससे सिविल मैरज कर ली, परन्तु शीघ्र ही पता चल गया कि उससे भारी गलती हो गयी है। छ महीने की तनातनी के पश्चात् उसने विबाह के बधने से मुक्ति पा ली।

इस बात को एक वर्ष बीत गया है। सुरेश ने अपनी एक दूसरी सहपाठिनी शकुन्तला से विवाह कर लिया है, पर प्रतिभा अभी एकाकी बनी हुई है। इन कटु-अनुभवों ने जहाँ उसके चचल-सौन्दर्य को सौम्यता प्रदान कर दी है, वहाँ उसकी आँखों को ऐसी गहराई बख्शी है जिसके लिए बहुत-सी चीजें पारदर्शी हो गयी हैं। उसके आकर्षण का केन्द्र उसकी यही आँखें और उसका वह सूक्ष्म चाचल्य है, जो, यद्यपि उसके कटु अनुभवों के कारण सौम्यता की चट्टानके बहुत नीचे दब गया है, पर कभी कभी जोर मार कर चट्टान को हिला देता है।

वह पहले भी कम सुन्दर न थी, परतु इन सब घटनाओं, अनुभवों और विरिक्त-मय-आसक्ति ने उसके आकर्षण को दुर्निवार बना दिया है। रहा उसका प्रेम, तो वह अब उस नदी का सा है जो एक ओर मार्ग न पाकर दूसरी ओर और दूसरी ओर रुकने पर तीसरी ओर बढ़ती है और गति के अवरुद्ध होने पर जब पलटती है तो अपने ही किनारों को तोडती चली जाती है।

भँवर

[पर्दा उठने पर प्रतिभा एक कौच पर बड़ी अन्यमनस्कता से लेटी दिखायी देती है। उसका सिर कौच के बाजू पर टिका हुआ है, एक पाँव कौच पर है और दूसरा फ़र्श के क़ालीन पर। कुछ क्षण इसी प्रकार लेटे-लेटे छत की ओर देखती रहती है फिर थकी सी अगड़ाई लेती है।]

प्रतिभा : (अगड़ाई लेते हुए) *ओह . ओ ! कितना बड़ा शून्य है यह जीवन !! कहीं भी तो कोई ऐसी वस्तु नहीं जो ठोस हो; जिसका सहारा लिया जा सके !* (बाहों को ढीला छोड़ देती है और वे धप से उसकी गोद में आ गिरती है—नौकरानी को आवाज़ देती है) *मन्दा ...मन्दा !*

मन्दा : (आँगन से) *जी आयी !* (कुछ क्षण बाद प्रवेश करती है) *जी !*

प्रतिभा . *यह खिड़की खोल दे !*

(मन्दा खिड़की खोलती है)

प्रतिभा : (उठ कर खिड़की के निकट जाती है) *ओह, बाहर तो घटा उमड़ी आ रही है और यहाँ आकाश एकदम सूना है। बादल का एक टुकड़ा भी तो कहीं नहीं।*

मन्दा : *कुछ मुझ से कहा बड़ी दी ?*

प्रतिभा : *कुछ नहीं। नीम्बू के शर्बत का एक गिलास बना ला !*

मन्दा : *अभी तो खना खाकर आप . . !*

प्रतिभा *बहस न कर, जो कहा ला !*

मन्दा : *जी अच्छा !*

[चली जाती है—बैक-ग्राऊ ड में प्रतिभा के पिता श्री रामनारायण मल्लिक की आवाज़ आती है]

श्री मल्लिक : *दीनू, साफ़ कर दिया साइकिल ? मुझे दफ्तर समय पर पहुँचना है। टैकनिकल यूनिट की मीटिंग होने वाली है*

पूरे सवा दो बजे। और वे मेरे फाइल उठा कर कैरियर के साथ बाँध दे!

[आँगन के दरवाजे से आकर बदबदाते हुए बरामदे की ओर जाते जाते]

— . *नाक में दम आ गया इस लड़ाई के मारे! पेट्रोल ही नहीं मिलता और साइकिल पर रोज देर हो जाती है। और फिर धूल . एकदम निकृष्ट ऋतु है:—इस तपती दुपहर और उडती धूल में साइकिल पर दफ्तर जाना—एक मुसीबत है।*

[बेजारी से सिर हिलाते हुए बरामदे के दरवाजे से निकल जाते है]

प्रतिभा : (वापस मुडते हुए) *दफ्तर और फाइल! पापा को इन दो चीज़ों के अतिरिक्त दुनिया में किसी वस्तु से सरोकार नहीं।*

[शृगार-मेज के सामने जा खड़ी होती है और योंही दर्पण में देखते हुए बालों पर हाथ फेरती है। आँगन से प्रतिभा की माँ का स्वर सुनायी देता है]

माँ : *मै पूछती हूँ वह मन्दा कम्बख्त किधर गयी? डिनर पर आज क्या पकेगा, कुछ इस की भी खबर है। कसटर्ड तो कल पका था, आज क्या होगा?*

प्रतिभा : (वापस आकर कौच में धँसते हुए, घुटे घुटे स्वर में) *लंच और डिनर! ममी को इस के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता। अभी लंच से निपटे नही कि डिनर की रट लगा दी। कोई समय हो, सैर का या आराम का, पापा दफ़्तर की गाथा ले बैठेंगे और ममी लच या डिनर की। रह गयी तीमा और मीला तो वे...*

[प्रतिमा विद्युत वेग से प्रवेश करती है—सत्रह अठारह वर्ष की युवती, एफ० ए० में पढती है। सुन्दर है, चचल है, जलने और जलाने में ज्वाला के सभी गुणों से विभूषित है]

प्रतिमा . दीदी, दीदी, तनिक देखना। मै ठीक भी लायी हूँ ये चीजें ? फूली न समाती थी मीला अपने टॉयलेट-बक्स पर। फर्स्ट क्लास लायी हूँ मै भी। देखो यह लिपस्टिक, यह पाऊडर, यह फाऊंडेशन लोशन!—सब आर्डीना के है। और यह हूबीगाँट का रूज और मस्कारा और आई-ब्रो पेंसिल (हँसती है—आत्म तुष्टि की हँसी) क्यो हैं न फर्स्ट रेट! जल जायगी मीला।

(जैसे आयी थी वैसे ही विद्युत-वेग से भाग जाती है)

प्रतिभा : कोई सीमा भी है! टॉयलेट के सिवा इन लडकियों को और कुछ आता हो नहीं।

[बैक ग्राऊंड में हारमोनियम के साथ धीरे धीरे गाने का स्वर उठता है]

यह सावन का घन आया!
क्या नया सदेशा लाया?

— (उठ कर व्यग्रता से कमरे में घूमती है) नीहार सांझ की पार्टी के लिए अभ्यास कर रही है शायद। वही भावुक, घटिया, फिल्मी गाने! न जाने ये लोग किस प्रकार इतना समय ऐसे थर्ड-रेट गीत सुनने और गाने को निकाल लेते हैं!

(गाना बराबर चलता है —)

रिमझिम रिमझिम बून्दियाँ बरसें,
नयन दरस को तेरे तरसें,
साजन,
ओ साजन!
डेरा परदेस लगाया!

— : अत्यन्त संकीर्ण और परिमित है घेरा इन के जीवन का—बस उसी में घूमे जाते हैं, रात दिन उसी में घूमे जाते हैं—बाहर निकलने का तनिक भी प्रयास नही करते। कोई

कुलाँच नहीं; कोई उडान नहीं; उच्च, उत्ताल, उद्दाम जीवन के लिए कोई इच्छा नहीं; सघर्ष नही !

(गाना बराबर चलता है —)

जीवन में जवानी आयी,
मस्ती मस्तानी छायी,
साजन,
ओ साजन !
दिल बैठ बैठ घबराया !

— : *आज फिर मन-मस्तिष्क को बलात् यह सब सुनना पडेगा। पापा फ्लैट भी तो नहीं बदलते* (स्वय ही व्यग्य से हँसती है) *बदल भी ले तो क्या ? पापा, ममी, तीमा, मीला और और उनकी निरर्थक पें पें—कही मुक्ति नही—इस झूठे, निकम्मे, खोखले जीवन से कहीं मुक्ति नहीं !*

यह सावन का घन आया।
क्या नया संदेशा लाया ?

[बेक ग्राऊ ड में गाने का स्वर बराबर आता रहता है। प्रतिभा व्यग्रता से खदबदाती सी कमरे में घूमती है, फिर जाकर बरामदे का दरवाजा बन्द कर देती है। गाने की आवाज अत्यधिक धीमी पड जाती है। प्रतिभा नौकरानी को आवाज़ देती है और खिडकी में जा खडी होती है]

प्रतिभा : *मन्दा !*

(कोई उत्तर नहीं देता)

— : (क्षण भर बाद फिर आवाज़ देता है) *मन्दा !*

मन्दा : (आँगन से) *जी लाय !*

[फिर खिडकी में बाहर देखने लगता है। नीलिमा प्रवेश करती है]

नीलिमा : *तीमा !*

[प्रतिभा अपने ध्यान में मग्न बाहर खिड़की में उमड़ते घुमड़ते बादलों को देख रही है]

— : (पास आकर) तीभा . प्रतिभा !

प्रतिभा . (मुड़ कर) आओ नीली ! कहो सिखा आयीं गाना नीहार को ?

नीलिमा : गाना ?

प्रतिभा : हाँ, साँझ की पार्टी के लिए !

नीलिमा : नहीं, मैं तो अभी अभी आ रही हूँ बाजार से। प्यास लग रही थी, सोचा पानी पीकर ही ऊपर जाऊँ।

प्रतिभा . आओ बैठो। (नौकरानी को आवाज़ देती है) मन्दा .. मन्दा !

मन्दा : (आँगन से) लायी दीदी !

प्रतिभा : क्या हो गया तुझे ? इतनी देर हो गयी और एक गिलास शरबत .

नीलमा अरे, तो दो मँगाओ।

प्रतिभा . नहीं, मैंने तो यों ही मँगाया था। जी कुछ घुट-सा रहा था। प्यास नहीं है मुझे। (नौकरानी को आवाज देती है) मन्दा !

(बढ़ कर आँगन की ओर जाने लगती है)

नीलिमा : (उसे बैठाते हुए स्वयं भी बैठती है) बैठो आ जायगी मन्दा। (स्वर को धीमा कर के) मुझे आज चाँदनी-चौक में सुरेश जी मिल गये।

प्रतिभा : (चुप रहती है)

नीलिमा : उनके साथ शकुन्तला भी थी।

प्रतिभा : (चुप रहती है)

नीलिमा : (अरमान भरे स्वर में) जोड़ी बुरी तो न थी तुम्हारी तीभा। कलचिड़ी-सी लगती है कुन्ती सुरेश के साथ। पर

तुम .....तुम्हारी जोडी सुन्दर थी। क्यो न चल सके तुम दोनों ?

प्रतिभा : (जैसे इस जिक्र ही से उसे कष्ट होता है) कई बार तो बता चुकी हूँ, किसी प्रकार की बौद्धिक-समानता न थी हम दोनों में।

नीलमा : तुम ने प्रयास ही नही किया।

प्रतिभा : व्यर्थ था।

नीलिमा : फिर विवाह ही क्यों किया था तुम ने ? (प्रतिभा कोई उत्तर नहीं देती) तुम्हे पहले से सन्देह होगा, तभी तो सिविल-मैरेज पर जोर देती थीं तुम !

प्रतिभा : हटाओ इस किस्से को। मै सुरेश की टैनिस पर मुग्ध थी, पर उसके जीवन का घेरा इतना परिमित है, इसका मुझे स्वप्न मे भी ध्यान न था। जीवन भर उसी परिधि मे बँधे रहने की कल्पना भी कष्ट-प्रद थी। शकुन्तला प्रसन्न रहेगी वहाँ। मैं तो इसी तरह अच्छी हूँ। बहिंजगत से जितना चाहती हूँ, रस ले लेती हूँ, नहीं घोंघे की भाँति अपने आप में मस्त पड़ी रहती हूँ। बहुत ऊब जाती हूँ तो प्रोफेसर नीलाभ के पास चली जाती हूँ।

नीलिमा : नीलाभ !

प्रतिभा : उनके पास कुछ पल बिताने से मुझे शान्ति मिल जाती है। एक प्रकार से एकाकी-सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं वे।

नीलिमा : परन्तु आयु तो उनकी कुछ इतनी अधिक नहीं।

प्रतिभा : आयु का प्रश्न नही। उन्होंने इतना काम किया है और इस निष्ठा से किया है कि थक-से गये हैं। और समस्त कोलाहल से दूर, आराम से पडे लिखने-पढ़ने में व्यस्त रहते हैं। उनकी अनुभूतियाँ इतनी विशाल और गहरी हैं और ज्ञान की इतनी बड़ी निधि उनके पास है कि उनके निकट कुच्छेक पल बिताने से मन हल्का हो जाता है।

मै तो जब इस वातावरण से ऊब उठती हूँ, उनके पास चली जाती हूँ ।

नीलिमा . तुम पुनः विवाह क्यो नहीं कर लेतीं ?

प्रतिभा : विवाह ?

नीलिमा : हाँ, प्रदीप ...नारायण . विश्वा . . नगेन्द्र और अब ज्ञान साहब—इस फ़्रस्ट्रेशन ❀ (*Frustration*) से लाभ !

प्रतिभा :—मैने पहली बार हो विवाह करके गलती की । वास्तव में मेरी प्रकृति विवाह के अनुकूल ही नही । मेरे मस्तिष्क के किसी कोने मे स्वतन्त्र और सुसस्कृत जीवन का कुछ ऐसा सुन्दर, सजीव और पवित्र चित्र अंकित है कि मै अब फिर विवाह करके उसे पुनः भ्रष्ट नहीं करना चाहती। यही कारण है कि सुरेश से मेरी चार दिन भी न बन सकी । मेरा वश चले तो मै कही एक किनारे बैठ कर अपनी उसी दुनिया के सुख-स्वप्न में अपना जीवन बिता दूँ, पर इस समाज मे ऐसा सम्भव नहीं, सो मैं सब से मिलती हूँ, परन्तु कमल के पत्ते की भाँति— पानी मे रह कर भी उससे ऊपर !

[उठ कर खिड़की में जा खड़ी होती है। चुपचाप बाहर की ओर देखने लगती है। तभी मन्दा शरबत का गिलास लेकर आती है।]

मन्दा : बड़ी दीदी शरबत !

प्रतिभा : (मुड़ कर) इनको दे ।

नीलिमा : (शरबत का गिलास लेते हुए) तुम हमारे लिए सदा एक पहेली बनी रही तीभा । (शरबत का घूँट भरते हुए) कहो, तुम्हारा ब्लाऊज़ सिल गया ?

प्रतिभा : नहीं अभी नहीं सिला ।

❀ *Frustration* = विच्छित्ति !

नीलिमा : मेरा तो सिल गया। स्लीव-लेस* ही सिलवाया मैंने। तुम ने जो कहा था कि स्लीव लेस .

प्रतिभा : मैंने तो फुल-स्लीवज का बनवाया है।

नीलिमा : फुल स्लीवज़ का ! किस प्रकार की है बाहे ?

प्रतिभा : आधुनिक रूसी ढग की (हँसती है) एकदम निरावरण सौन्दर्य से अधखुला-अधछिपा, झीना-झीना सौन्दर्य कहीं आकर्षक लगता है।

नीलिमा : तब तो साडी भी बॉटल-ग्रीन रग की होगी।

प्रतिभा : हाँ, क्यों ?

(प्रतिमा फिर खिडकी में देखती है।)

नीलिमा : उस दिन जब मैंने यही दोनों चीजें पसन्द की थी तो तुम हँस दी थी और अब .. यह खिडकी में बार-बार किसको देख रही हो ?

प्रतिभा : खिड़की में ! ....किसी को भी नहीं.... . यो ही उमड़ते हुए बादलों को देख रही थी।

नीलिमा (अपनी बात का तार पकडते हुए) और उस समय जिन चीजों पर तुम ने नाक भौ चढ़ायी थी, वही तुमने अब आप सिलवा लीं।

(मन्दा दरवाजे से झाँकती है)

मन्दा : बडी दीदी, दर्जी आया है।

प्रतिभा : बुला ला।

नीलिमा : तुम ने कहा था, स्लीवज़ नारी की उस दासता का चिन्ह हैं जब उसे सात पर्दों के अन्दर रखा जाता था। अब जीवन आज़ादी चाहता है। वर्षा ऋतु की शीतल, सरसराती बयार मे स्लीव-लेस ब्लाऊज़ का आनन्द......

(दर्जी प्रवेश करता है)

दर्जी : सलाम हुजूर !

---

*Sleeve less = बिन आस्तीन का।

प्रतिभा · क्यों मियाँ साहब, बहुत दिनो मे आये। कहो कर लाये ठीक ? अब तो कहीं से तंग नही ?

दर्ज़ी . पहन कर देख लीजिए सरकार। हाँ, हाँ, इसी ब्लाउज़ पर पहन लीजिए। कुछ टाइट फिट सिया था, नहीं कट (cut) तो इतनी अच्छी है सरकार कि इसी को देख कर मिसेज जमील अपना ब्लाउज़ सीना दे गयीं।

प्रतिभा (ब्लाउज पहनते हुए) हाँ, इस बार तो ठीक लगता है। क्यो नीली !

नीलिमा तुमने खूब उल्लू बनाया मुझे तीभा। कितना फबता है तुम्हारे अगों पर ! मै तो इसी समय बाज़ार जाऊँगी और खडे-खडे इसी स्टाइल का ब्लाउज सिलवा कर लाऊँगी।

दर्ज़ी सारे का सारा हाथ का सिला है हुजूर। दो दिन लग गये केवल इसकी चुन्नटें डालते।

प्रतिभा : (ब्लाउज उतार कर देते हुए) और साड़ी ?

दर्ज़ी · यह रही सरकार !

प्रतिभा . इधर मेज़ पर रख दो और देखो मियाँ साहब, दूसरे कपडे भी जल्दी सियो।

दर्ज़ी : (साडी को मेज पर रखते हुए) बस परसों ले लीजिए हुजूर।

[ब्लाउज को तह लगा कर साडी के ऊपर रखता है और—'सलाम हुजूर' कह कर चला जाता है]

नीलिमा : हमारा दर्ज़ी ब्लाउज सीकर लाया तो जगन भी बैठा था। बोला यह कैसा सन्यासिनों का सा रंग चुना है आपने ?

प्रतिभा . जगन, कौन जगन ?

नीलिमा . अरे जगन......इडीपेंडेंट क्रिकेट टीम का कप्तान।

प्रतिभा . ओह ! कदाचित अब क्रिकेट खेलते-खेलते उसका मन ऊब गया है। अब वह स्वय गेंद बनना चाहता है ! (हँसती है) देखना बेचारे को ग्राऊंड के पार ही न फेंक देना।

नीलिमा : तुम सब को अपने ही जैसा समझती हो। वह तो तीमा के कारण...... .

प्रतिभा : (उसकी बात को सुनी अनसुनी करके हँसते हुए) ठोकर मारो, किन्तु ऐसी भी नहीं कि फिर पाना चाहो तो पा ही न सको।

नीलिमा तुम्हारे उन दार्शनिक महाशय का क्या हाल है—ग्राउंड से परे ही पड़े है या वरे आ गये हैं।

प्रतिभा : दार्शनिक महाशय ?

नीलिमा : प्रो० ज्ञानचन्द्र . .. ..

प्रतिभा : हमारे मध्य वही अन्तर है— न कम, न ज्यादा ! अन्तर को एक जैसा रखना मुझे खूब आता है। हमारी मित्रता बौद्धिक है। मै सदा उन लोगों को पसन्द करती हूँ .....

नीलिमा : जो तुम से बौद्धिक मैत्री रख सकें ! (व्यंग्य से) यह बौद्धिक मैत्री भी खूब ढोंग है तुम्हारा। जब से ज्ञान साहब यूनिवर्सिटी में आये हैं अथवा यों कह लो कि पड़ोस में आये हैं, तुम तो बस घर ही की हो कर रह गयी हो। न सिनेमा......

प्रतिभा : मस्तक जिनका शून्य है, उन्हीं को भाता है सिनेमा।

नीलिमा : न पिकनिक......न सैर तमाशा.....

प्रतिभा : बेकार लोगों के व्यसन है। मैं जब भी कभी सिनेमा जाने को विवश हुई हूँ, मुझे अपार मानसिक-यन्त्रणा सहनी पड़ी है। ऐसे निकम्मे और भोंडे चित्र बनाती हैं हमारी फ़िल्म कम्पनियाँ कि मैं पागल हो उठती हूँ। जी चाहा करता है— जाकर सिनेमा के पर्दे को फाड़ दूँ और ज़ोर ज़ोर से चीख उठूँ।

नीलिमा : तुम भी खूब बनती हो तीभा। हरदत्त साहब के साथ तो....... .

प्रतिभा . मैं कई बार सिनेमा देखने गयी हूँ, यही कहना चाहती हो न

तुम। पर सुरेश के साथ सम्बन्ध तोडने के बाद मै अपने को कुछ इतनी अकेली-अकेली, ऊबी-ऊबी, थकी-थकी पाती थी, हरदत्त कुछ इतना अनुरोध करते थे कि विवश होकर चली जाती थी।

नीलिमा . हरदत्त सिनेमा के बडे रसिया हैं।

प्रतिभा : वे सदैव एक बुद्धिवादी का आवरण चढाये रहते है, पर जब वे सिनेमा-हाल में बैठे-बैठे अपने खोल को भूल कर, थर्ड-रेट गानों पर सिर धुनने लगते है तो मै प्रायः हँस देती हूँ और कई बार जब फिल्म अत्यन्त निकृष्ट होता है, मेरा जी चाहा करता है कि अपना और उनका गला घोट दूँ।

नीलिमा : प्रोफेसर ज्ञान सिनेमा पसन्द नहीं करते ?

प्रतिभा : वे बुद्धिवादी है। उनके निकट सिनेमा देखना समय नष्ट करने के बराबर है।

नीलिमा . तुम भी तो बुद्धिवादी हो।

प्रतिभा यही तो मुसीबत है। कभी जब मै बाहर जाना चाहती हूँ तो वे नहीं चाहते और कभी जब उनका जी होता है तो मेरा मूड नही होता।

नीलिमा : न जाने तुम दोनों घटों बैठे क्या मिसकोट करते हो। मै तो ऊब जाऊँ ऐसी बौद्धिक-मैत्री से। खाली बैठे-बैठे उकता जाय मेरा तो मन!

प्रतिभा : ज्ञान साहब के साथ कभी ऐसा नहीं लगा कि हम खाली हैं अथवा समय व्यर्थ गँवा रहे है। उनके दृष्टि-कोण, उनके दृष्टि-मूल्य सब दूसरों से भिन्न हैं। उन्होंने स्वय प्रो॰ नीलाभ से शिक्षा प्राप्त की है और मै सच कहती हूँ नीली, कभी-कभी मुझे ऐसे लगता है कि अन्त को जैसे मैं...... ..मैं....

नीलिमा : तुम उपयुक्त साथी पा गयी हो। मेरी बधाई लो! पर देखो, तुम और कही जाओ या न जाओ पर अपने इस बौद्धिक संगी को लेकर मेरे यहाँ संध्या को अवश्य पहुँच

जाना। मन्दा और दीनू की मुझे आवश्यकता होगी। तुम जानती हो नौकर हमारा बीमार है, केवल एक-दो घंटे की बात है, अपनी ममी से कह देना।

(मन्दा आती है)

मन्दा : बड़ी दीदी, एक साहब मिलने आये है। यह रुक्का दिया है।

प्रतिभा : (रुक्का देखते हुए) जगन्नाथ!

नीलिमा : अरे जगन है। लो वह यहाँ आ पहुँचा। पार्टी का सब प्रबन्ध तो वास्तव में वही कर रहा है।

प्रतिभा : बुलाओ तो देखे तुम्हारे उस क्रिकेटर को। इसी प्रकार हमारा भी क्रिकेट से थोडा बहुत परिचय हो जायगा।

नीलिमा : नही भई, अब जाने दो। साँझ को आना ज्ञान साहब के साथ। परिचय छोड क्रिकेट की सारी टेकनीक सीख लेना (उठते हुए लम्बी सास लेकर) कितना अच्छा लगता है यह ब्लाऊज तुम्हे!

प्रतिभा : तुम्हें इतना पसन्द है तो ले जाओ। एक ही तो साइज़ है हम दोनों का, मैं तुम्हारे वाला पहन लूँगी।

नीलिमा : ले जाऊँ, सच!

प्रतिभा : ले जाओ, पहन कर देख लो।

नीलिमा : (साड़ी और ब्लाऊज़ की ओर अरमान-भरी आँखों मे देख कर) नहीं भई, तुम्हीं पहनो।

प्रतिभा : न जाने किस क्षणिक-भावना के अधीन मैंने इसे सिलवा लिया। अब पहनते हुए सकोच होता है। न जाने कभी-कभी मन कैसा हो जाता है। चाहती हूँ अपनी इस सारी बौद्धिकता को उठा कर एक ओर रख दूँ और साधारण लोगों की भाँति हँस खेल सकूँ। पर दूसरे ही क्षण प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है। तुम यह ले जाओ नीली। मैं तुम्हारे वाला पहन लूँगी।

नीलिमा : (उदास हँसी के साथ) तुम जो भी पहनोगी सब उसी की प्रशंसा करेंगे। अभी रखो। आवश्यकता हुई तो मँगा लूँगी।

(बैक ग्राऊन्ड से फिर गाने की ध्वनि आती है।)

यह सावन का घन आया
क्या नया सँदेशा लाया

— . यह नीहार तो पड़ी है बाजे के पीछे। दो दिन हुए पंडित अमरनाथ सिखा गये थे यह धुन। बस जब देखो सावन का घन चला आ रहा है। कान पक गये सुनते सुनते। लो अब पहुँच जाना ज्ञान साहब को लेकर। मैंने उन्हें निमन्त्रण भिजवा दिया है, फिर याद दिलाने का प्रयास करूँगी। पर यदि उन्हें निमन्त्रण पत्र न मिला या मैं याद न दिला सकी तो तुम लेती आना अपने साथ। बाई.. ... .बाई !

[चली जाती है बैक ग्राऊन्ड में गाना और भी साफ़ सुनायी देता है।]

सब सखियाँ नाचें गायें
मिल-जुल सावनी मनायें
साजन
ओ साजन
क्या नव-जीवन है छाया
यह सावन का घन आया
क्या नया सँदेशा लाया।

प्रतिभा : (जल कर अपने आप से) नया सँदेश और नया जीवन ! (एक कटु व्यंग-मय हँसी के साथ) फिल्मी गाने, फिल्मी फ़ैशन और फिल्मी जीवन......ऊँह !

(विरक्ति से सिर हिलाती है, टेलीफोन की घंटी बज उठती है।)

— : (चोंगा उठा कर) हैलो.........हैलो .... कौन, हरदत्त साहब......नमस्कार नमस्कार......धन्यवाद। पर आज

तो क्षमा कीजिए . ..... (हँसती है) नहीं नहीं, यह बात नहीं। आज नीहार की वर्षगाँठ है। अभी अभी नीलिमा बुला गयी है। न गयी तो जीवन भर क्षमा न करेगी . अजी छोडिए, न नयी न पुरानी, फिल्मों की तो एक ही दुयिना है—घटिया, भावुक और रूमानी... हाँ अवश्य पधारिए, पर सिनेमा मै न जाऊँगी। नमस्कार !

(चोंगा रख देती है। मन्दा दरवाजे से झाँकती है।)

मन्दा : प्रोफेसर ज्ञान आये है बडी दीदी।

प्रतिभा : ले आ।

मन्दा : (बैक ग्राऊन्ड में आवाज देती है) चले आइए साब !

(प्रोफेसर ज्ञान प्रवेश करते हैं।)

ज्ञान : (आते हुए) नमस्कार !

नीलिमा . (मुख पर मुस्कान झलक उठती हैं, परन्तु मस्तक की रेखाएँ नहीं मिटतीं) नमस्कार ! आइए, बैठिए।

ज्ञान : कहिए कुशल तो है। ये लकीरें सी कैसी हैं मस्तक पर ?

प्रतिभा : मेरी छोड़िए, अपनी कहिए। इतने दिनों से दिखायी नही दिये आप ?

ज्ञान : एक नाटक लिखने का प्रयास कर रहा था।

प्रतिभा : (हँस कर) नाटक ! नाटक आप कब से लिखने लगे ?...... दिखाइए !

ज्ञान : (आराम कुर्सी पर बैठते हुए) लिख नहीं सका। जो कुछ लिखा था, उसे फाड़ कर आप की ओर चला आया हूँ। (हँसते हैं) इतना कुछ पढ़ने के पश्चात् लिखना शायद अब दुष्कर है।

प्रतिभा . यही दशा मेरी है। कई बार जी चाहता है कि अपनी सब उदासी, सब घुटन, समस्त व्यग्रता पक्तिबद्ध कर दूँ।

बहुत सोचती हूँ, खाके बनाती हूँ, पर जब लिखने बैठती हूँ तो दो पक्तियाँ भी नही लिख पाती।

ज्ञान : मेरा विचार है, आपको फिर शादी कर लेनी चाहिए। आपकी सब उदासी, घुटन, व्यग्रता समाप्त हो जायगी।

प्रतिभा : शादी !

(हॅसती है।)

ज्ञान : फ्रायड का कथन है ...

प्रतिभा : मैने फ्रायड पढ़ा है, पर कदाचित् मैं उन लोगों में से हूँ जो शादी के लिए नही बने। आप नाटक किस विषय पर लिख रहे थे ?

ज्ञान : फ्रायड कहता है— पवित्र प्रेम मात्र कपोल-कल्पना है। प्रत्येक प्रेमी अपने हृदय की किसी गहन गुफा में यौन-भावना को छिपाये होता है— परन्तु मेरा विचार है कि स्थायी प्रेम उतना शारीरिक नही होता जितना आध्यात्मिक।

प्रतिभा : स्थायी प्रेम अतृप्ति का दूसरा नाम है।

ज्ञान : आप ठीक कहती हैं। प्रायः स्थायी प्रेम अतृप्ति के अतिरिक्त और कुछ नही होता। मानव अपने प्रेमी के साथ अपनी यौन-भावना को तृप्त नही कर पाता और जीवन भर उस अतृप्ति की आग में जलता रहता है। समझता है कि उसे अपने प्रिय से अमर, अनन्त, कभी न कम होने वाला, न मरनेवाला पवित्र-प्रेम है।

प्रतिभा : यद्यपि उसके हृदय में निरन्तर सुलगने वाली वस्तु प्रेम नहीं वरन् सेक्स की वह सुलगती चिगारी होती है जो कभी धधक कर ज्वाला न बनी।

ज्ञान : आप ठीक कहती है। दूसरा प्रेम वह होता है जो मात्र वासना की तृप्ति ही को अपना ध्येय समझता है। प्रायः लोग अपनी सुन्दर, सुशील, पतिव्रता स्त्रियों को छोड़ कर बाजार की किसी अनुभवी वेश्या की चौखट पर माथा रगडते हैं और समझते है कि उन्हें उस वेश्या से अथाह, अपार

अनन्त प्रेम है। यद्यपि उनका प्रेम उस शारीरिक आनन्द से अधिक कुछ नही होता जो उन्हें घर की शरमीली, लजीली संगिनी के सान्निध्य में प्राप्त नही होता।

प्रतिभा : जी!

ज्ञान : परन्तु कई बार ऐसा भी होता है कि पुरुष उस नारी से विवाह करने को विवश होता है जो न केवल उसके लिए कोई विशेष शारीरिक आकर्षण नहीं रखती, बल्कि जिसके शरीर से वह उपेक्षा भी रखता है, परन्तु धीरे धीरे वह नारी अपनी सरलता, शालीनता और बुद्धिमत्ता से उसके मन-मस्तिष्क पर ऐसे छा जाती है कि वह उससे उपेक्षा के बदले प्रेम करने लगता है और उसके सीधे-साधे रूप में भी सौन्दर्य ढूँढ लेता है। उसके उस प्रेम में शारीरिक प्रेम के टाइफ़ाइड का सा ज्वर नहीं होता वरन् यक्ष्मा की सी हल्की-हल्की उष्णता होती है, परन्तु उस धीमी धीमी उष्णता से उसे जीवन भर मुक्ति नहीं मिलती।

प्रतिभा : आपको शादी कर लेनी चाहिए।

ज्ञान : (आशा भरे स्वर में) शादी!

प्रतिभा : (हँस कर) किसी ऐसी ही कुरूप पर बुद्धिमती, सुशील, सरल लडकी से।

(हँस देती है)

ज्ञान : हम बुद्धिवादी प्रेम के सन्निपात की ज़ंजीरों से कब के निकल आये है। हमारे यहाँ प्रेम की चिंगारी सुलग तो सकती है, ज्वाला नहीं बन सकती। यह ब्लाऊज़ और साड़ी किस की है? प्रतिमा की होगी!

प्रतिभा : नहीं मेरी है।

ज्ञान : आप की!

प्रतिभा : (हँसते हुए) सुलगती हुई चिंगारी को कभी ज्वाला बनाने का प्रयास किया करती हूँ।

ज्ञान : यह तो बडी भडकीली है। सर्वथा बच्चो की सी। आप तो इतनी सौम्य है .

प्रतिभा : मनुष्य ज्यों ज्यों बडा होता है, उसकी आकाँक्षाएँ अतीत की ओर भागती है। मैं एक बार फिर बच्ची बन जाना चाहती हूँ। आज साफ़ नीली के यहाँ पार्टी है।

ज्ञान : ओह—!

प्रतिभा . आपको भी तो निमन्त्रित किया है।

ज्ञान : किया तो है, पर मेरा वहाँ जाने का तनिक भी विचार नहीं। आप जा रही हैं ?

प्रतिभा : बैठे बैठे उकता गयी थी। सोचा कि हो आऊँ। एक सीढी ही तो है। न गयी तो नीलिमा रूठ जायगी। नीहार की वर्ष-गाँठ है।

ज्ञान : वर्ष- गाँठ (हँसते है) ये लोग पार्टियों के नित्य नये बहाने गढ लेते है।

प्रतिभा : आप *Sceptic* हैं।

ज्ञान : जो हो, पर मैं तो इन पार्टियों में जाकर ऊब उठता हूँ। स्त्रियाँ इस बात का यत्न करती हैं कि वे अपनी कुरूपता को अधिक से अधिक छिपा सकें और पुरुष इस बात का कि वे अधिक से अधिक *Chivalrous* दिखायी दें!—वही खोखले शिष्टाचार, वही भोंडे मज़ाक, वही भद्दे फ़ैशन।— इन पार्टियों से अधिक विरस और कोई वस्तु नही। इस से तो अच्छा है कि चलिए कनाट पैलेस चलें, ज़रा काफ़ी पियें।

प्रतिभा . नही पार्टी में तो जाना ही पडेगा। रही साड़ी, यह अब न पहन कर जाऊँगी। यह नीली को दे दूँगी। उसे बहुत पसन्द है।

ज्ञान : हाँ, यह उसे दे दीजिए।

Sceptic = सन्देह-शील,

प्रतिभा : *एक बार पहन कर तो देखूँ, कैसी लगती है।*

[साडी ब्लाऊज़ लेकर अन्दर कमरे की ओर जाने लगती है, प्रो० ज्ञान जाने को उठते है।]

प्रतिभा : *अरे चल दिये। बैठिए ना।*

ज्ञान : *नही मैं अब चलता हूँ।*

प्रतिभा : *बैठिए भी। पानी बरसा चाहता है। भीग जाएँगे आप। मै साडी बदल कर आयी। तनिक देखिये तो कैसी लगती है मुझे।*

(अन्दर चली जाती है, मन्दा आती है।)

मन्दा . (दरवाज़े से) *दीदी....* (अन्दर आकर) *बड़ी दीदी किधर गयीं?*

ज्ञान : *अन्दर कपड़े बदल रही हैं।*

मन्दा : *एक साब आये है। यह कार्ड दिया है।*

प्रतिभा : (अन्दर कमरे से) *कौन हैं?*

ज्ञान : (कार्ड पढ कर) *जगन्नाथ!*

प्रतिभा : *क्रिकेट टीम के कप्तान?*

ज्ञान . *कह नही सकता, यहाँ तो केवल जगन्नाथ लिखा हुआ है।*

प्रतिभा : *वही हैं, वही है। मन्दा ले आ उन्हें, ज्ञान साहब जरा बैठाइएगा। नीली के मित्र है।*

मन्दा : (बैक ग्राऊन्ड में) *आ जाइए।*

(जगन आता है। उसके एक हाथ में पैकेट है)

जगन : (जोश से) *Good Afternoon!*

ज्ञान : (बेदिली से) *Good Afternoon! आइए, पधारिए।*

जगन : *मिस नारायण कहाँ हैं?*

ज्ञान : *साथ के कमरे में हैं। अभी आती हैं। कहिए कुछ पीजिएगा?*

जगन : धन्यवाद । मै तो यही ऊपर के फ्लैट से आ रहा हूँ ।

ज्ञान : ऊपर के फ्लैट से ?

जगन : मिस नीलिमा के यहाँ से ।

ज्ञान : ओह—!

(प्रतिभा नयी साडी और ब्लाऊज़ पहन कर आती है ।)

जगन : (उठ कर) नमस्ते जी !

प्रतिभा : नमस्ते ! कहिए आप ही मिस्टर जगन्नाथ है—इंडीपेंडैंट क्रिकेट टीम के कप्तान ?

जगन : (रग लाल हो जाता है) जी !

प्रतिभा : ये है प्रोफेसर ज्ञानचन्द्र, यूनीवर्सिटी में दर्शन के अध्यापक है ।

जगन . (उठ कर बड़े तपाक से मिलाने को हाथ बढाते हुए) हाऊ डू यू डू !

ज्ञान : (यह देख कर कि जगन ने हाथ बढा दिया है अतीव अन्य-मनस्कता से हाथ बढाते हुए—) हाऊ डू यू डू !

प्रतिभा : कहिए कैसे पधारे ?

जगन . नीलिमा जी ने यह रुक्का दिया है और यह पैकेट !

प्रतिभा (रुक्का पढ़ कर) मै यों ही पहन कर देख रही थी । अभी बदल कर ला देती हूँ ।

जगन : यही साडी नीलिमा जी ने माँगी है ।

प्रतिभा : जी !

जगन : यह तो बडी सुन्दर लगती है आपको । आपके सुनहले बालों के साथ इस का बॉटल ग्रीन रग . वाह !

प्रतिभा : (मानो प्रशसा को न सुनते हुए) नीलिमा को यह बड़ी पसन्द है ।

जगन : पर वे......वे तो .... वे तो कुछ .

प्रतिभा : मै इतने शोख रंग पसन्द नहीं करती ।

जगन : (अनिमेष दृगों से प्रतिमा को देखते हुए) *यह तो लगता है जैसे आप ही के लिए बनी है। नीलिमा जी तो इस में बिलकुल गुड़िया सी दिखायी देंगी।*

प्रतिभा : (उल्लास को छिपा कर विनम्रता से) *मुझे सूफियाना रग पसन्द है। लाइए दीजिए मुझे, मै बदल लूॅ।*

जगन : *फिर बदल लीजिएगा, कनाट पेलेस से आकर।*

(साडी को मेज़ पर रख देता है।)

प्रतिभा : *पर मै तो अभी नहीं जा सकती।*

जगन . *नीलिमा जी ने लिखा नहीं।*

प्रतिभा : *उसने लिखा है, पर मेरा मन कुछ ठीक नहीं।*

जगन : *कुछ शॉपिग (Shopping) करनी है और मुझे यह सब आता नहीं।*

प्रतिभा : *नीलिमा क्यों नहीं जाती आपके साथ ?*

जगन : *वे तो फर्नीचर सजाने में लगी हुई है। चलिए वहाँ काफ़ी हाऊस में एक एक कप काफी पिऍगे और.. ...*

प्रतिभा : (जैसे उसकी अन्यमनस्कता और उदासी सहसा दूर हो जाती है ! *काफी ! (... .ताली बजाती है)......That is excellent ! चलिए ज्ञान साहब आप भी चलिए।*

ज्ञान : *परन्तु वर्षा होने वाली है और मेरा स्वास्थ्य आप जानती है.........*

जगन : *मेरी कार जो है। हम सब कार में चलेंगे।*

प्रतिभा : *उठिए ! कैसी घटा घिर के आयी है। चलिए, चलिए।*

(तीनों चलते है।)

(पर्दा।)

दूसरा दृश्य

[पर्दा दो अढाई घंटे बाद उसी कमरे में उठता है। प्रतिमा ड्रेसिंग-टेबल के सामने खडी, अपने बालों में अगुलियों से कघी कर रही है। प्रमिला/प्रवेश करती है—बाहर तेरह वर्ष की सुन्दर, अबोध, चचल लडकी—प्रतिभा की सब से छोटी बहन है।]

प्रमिला : *मुझे बुलाया छोटी दीदी ?*

प्रतिमा : *मीली, जा तो ज़रा मेरा टायलेट-बक्स उठा ला ! दीदी के कमरे में दर्पण बड़ा है। मै यहीं तैयार हूँगी। अपने जरा से शीशे के आगे तो मुझ से कुछ होता ही नही।*

प्रमिला · *मैं तो नीचे जा रही हूँ। तुम आप जाकर ले आओ।*

प्रतिमा : *बडी अच्छी है मेरी मीली बहन,* (जाकर उसकी पीठ थपथपाती है।) *जा भाग कर !*

प्रमिला . *मै तुम्हारा आर्डीना का पाऊडर लूगी फिर।*

प्रतिमा : *तुम्हारा जो है।*

प्रमिला : *मैं तुम्हारा लूँगी।*

प्रतिमा : *अच्छा ले लेना। अब जाकर ले आ जल्दी। दीदी आ जायँगी तो फिर भागना पड़ेगा यहाँ से।*

[प्रमिला जाती है। प्रतिमा प्रतिभा की कघी उठाकर केश सँवारती और गाती है :—]

दुल्हिनियाँ छमा छम छमा छम चली
तन पर हँसता इक इक गहना
सावन भादो जैसे नयना
आज जवानी की फुलवारी
फूली और फली !

प्रमिला : (आते आते दरवाजे से) *किस की दुल्हनियाँ ?* (शरारत से मुस्कराती है) *जगन भय्या की ?*

प्रतिभा : *हश्त ! ला इधर !*

(बरामदे में प्रतिभा और जगन बातें करते हुए आते है।)

जगन : *यह सामान आप नीलिमा जी के यहाँ भिजवा दें। मै इतने में आप का ब्लाऊज़ और साडी ले आता हूँ।*

प्रतिभा : *मै अभी दीनू को आवाज़ देती हूँ। दीनू......दीनू !*

प्रतिमा : *ऊई ! लो यह बक्स और भागो।*

[दोनों आगन के दरवाजे से भाग जाती है। प्रतिभा प्रवेश करती है, जगन भी साथ है। वह दरवाजे के पास ही रुक जाता है।]

जगन : *मै अभी जाता हूँ। सिर पर सवार न हूँगा तो वे कभी समय पर न देंगे ब्लाऊज़।*

प्रतिभा : (दरवाजे के समीप ही) *मै बड़ी आभारी हूँ। आपसे मिल कर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। इतना समय बीत गया और पता भी नहीं चला। यह साड़ी ब्लाऊज़ लाने का कष्ट मैने आपको योंही दिया।*

जगन : *कष्ट कैसा, मेरी तो बड़ी देर से इच्छा थी आप से भेंट करने की। कई बार अवसर ढूँढ़ने का प्रयास किया, पर मिल ही न सका।*

प्रतिभा : *आप अच्छे समय पर आये, मै स्वयं कुछ ऊबी ऊबी सी थी।*

जगन : (एक हाथ से दीवार का सहारा ले, जम कर बात करते हुए) *आप कुछ एक्सरसाइज़ किया करें। स्पोर्टस आदि में भाग लिया करें।*

प्रतिभा : (कलाई की घडी को देख कर) *एक्सरसाइज़ !*

जगन : (बिना इस बात की ओर ध्यान दिये कि प्रतिभा घडी में समय देख

रही है) शरीर के लिए एक्सरसाइज़ उतनी ही आवश्यक है, जितनी स्वच्छ वायु। पिंग-पांग, बेडमिंटन, टेबल-टेनिस— क्या आपको किसी में भी दिलचस्पी नहीं?

प्रतिभा : (हँस कर) आज तक तो मेरी एक्सरसाइज़ मानसिक ही रही है। अब सोचती हूँ, कोई न कोई आऊट-डोर (*Out-door*) खेल अवश्य खेला करूँ। अब आप से परिचय हुआ है तो .....

[बात समाप्त करना चाहती है, 'नमस्कार' के लिए दोनों हाथ भी जरा बढाती है, पर जगन नहीं देखता, अपनी बात जारी रखता है।]

जगन : आप अवश्य किसी क्लब की सदस्य बन जाइए। इंडी-पेंडेंट-क्रिकेट-क्लब की मेम्बरशिप बड़ी सीमित है, पर यदि आप चाहें तो बडी सुगमता से उसकी सदस्य बन सकती हैं। मैंने प्रतिमा जी से भी कहा था। बड़ा अच्छा हो यदि आप दोनों.. ...

प्रतिभा : प्रतिमा से... .....!

जगन : उन्हें भी किसी न किसी खेल में अवश्य भाग लेना चाहिए (हँसता है) नही वे मोटी हो जायँगी। वास्तव में हमारे देश की सब से बडी ट्रेजेडी ही यह है कि स्त्रियाँ व्यायाम में दिलचस्पी नही लेतीं।

प्रतिभा : मैं स्पोर्ट्स की बहुत पसन्द करती हूँ, पर मेरा अधिक समय अध्ययन में गुज़रा है और जिन लोगों से मेरी सगति है; वे सब के सब बुद्धिवादी हैं।

(फिर घडी देखती है।)

जगन : (बिना सकेत समझे) आप मेरे साथ चलिएगा। इडी-पेन्डेंट-क्रिकेट-क्लब स्पोर्ट्स के विचार से सब से अच्छा क्लब है। आप किसी खेल में भाग तो लें। आप की सब थकन, सब उकताहट जाती रहेगी।

प्रतिभा . (ऊब कर विषय को बदलते हुए) यह दीनू नहीं आया। आवाज देती है दीनू......दीनू ।

दीनू . (आगन से) जी आया ।

('जी'....'जी' कहता हुआ भागा आता है।)

प्रतिभा : मोटर मे कुछ सामान पड़ा है, वह सब ऊपर पहुँचा दे।

दीनू : जी!

(सिर झुका कर चला जाता है।)

जगन (जिसे यह दखल-अन्दाजी नहीं भायी, कुछ और जोश से अपनी बात जारी करते हुए) मै आप से सच कहता हूँ, मै बीमार रहा करता था, मेरा रंग पीला-पीला और स्वभाव अत्यधिक चिडचिडा था; परन्तु कालेज में प्रवेश करते ही मैंने नियमित रूप से व्यायाम करना आरम्भ कर दिया। मै अत्युक्ति से काम नहीं लेता—हजार-हजार डड तो मै एक ही हल्ले में पेल जाया करता था।

(प्रतिभा एक थकी सी हँसी हँसती है)

जगन . और बी० ए० तक जाते जाते मैं अपने कालेज की क्रिकेट टीम का कप्तान हो गया। क्रिकेट ही नहीं, फुटबाल में भी मैं कालेज की इलैवन में था और फिर लॉग जम्प, हाई-जम्प, सौ गज़ की दौड़, यहाँ तक की क्रास-कटरी-रेस......

प्रतिभा · (कलाई पर घडी देख कर) सवा पांच बजने को है।

जगन · लीजिए मै चला। आप आरम्भ तो कीजिए किसी खेल में भाग लेना।

प्रतिभा : आप से परिचय हो गया है तो......

(दोनों हाथ मस्तक तक ले जाती है।)

जगन : लीजिए अभी लेकर आया दोनों चीज़ें। कितनी सुलझी

हुई रुचि है आपकी। यह नया डिजाइन भी कितना अच्छा चुना है आप ने!

प्रतिभा : समय पर पहुँच जाइएगा, नही मै जा न सकूंगी पार्टी में।

जगन जी मैं अभी आया।

(चला जाता है।)

प्रतिभा (एक थकी सी अगड़ाई लेती है) उफ! कितना सीमित है इस व्यक्ति का घेरा! कितनी बाते करता है और फिर कितनी निरर्थक और निराभिप्राय — यह भी नहीं देखता कि दूसरा सुनते सुनते ऊब गया है। (बाजू कौच पर पीछे फेंक कर टॉग पसार लेती है) ईश्वर ने क्यों किसी को सम्पूर्ण नहीं बनाया! कितना सुन्दर और सुडौल है यह जगन, किन्तु मस्तिष्क से कितना शून्य! और ज्ञान कितने योग्य पर कितने दुबले पतले! (सिर कौच के बाजू पर टिका कर लेट जाती है) प्रोफेसर नीलाभ......प्रोफ़ेसर नीलाभ...... कितने सुन्दर और फिर कितने योग्य......!!

(नीलिमा घबरायी हुई प्रवेश करती है)

नीलिमा : मुझे क्षमा करना तीभा, किन्तु जगन अभी तक आया नहीं और मैं अपनी ओर से सारा प्रबन्ध कर चुकी हूँ।

प्रतिभा. हम काफी पीने चले गये—प्रो० ज्ञान, मैं और जगन। वहीं पर हरदत्त साहब भी मिल गये।

नीलिमा : किन्तु प्रतिभा.

प्रतिभा : रास्ते में मुझे एक रेडी-मेड ब्लाऊज और साडी पसन्द आ गयी। ब्लाऊज की फिटिंग ठीक न थी, इसलिए दर्ज़ी ही को दे आयी। जगन उसे लेने गया है। ठीक कर दिया होगा अब तक दर्जी ने। अत्यधिक सादा डिज़ाइन है ब्लाऊज़ का। स्लीव-लेस .....

नीलिमा : पर तीभा, यह क्या अनर्थ कर दिया तुम ने? नीहार रो रो

कर प्राण दे देगी। निर्मल और उसके मित्र आ रहे हैं और घर में कोई वस्तु नहीं कि उनकी कुछ आवभगत ही हो सके।

प्रतिभा : कोई वस्तु नहीं ! अभी तो दीनू के हाथ सब कुछ भेजा है।

नीलिमा : दीनू के हाथ, कहीं भी तो नहीं।

प्रतिभा : (नौकर को आवाज़ देती है) दीनू......दीनू !

दीनू : (आँगन से) जी दीदी !

('जी' 'जी' करता हुआ भागा आता है।)

प्रतिभा : सामान नहीं पहुँचाया इनका ?

दीनू : (आश्चर्य से) इनका, मै तो साथ के फ्लैट में रख आया हूँ।

प्रतिभा : मैंने तुम से कहा था, ऊपर पहुँचा दो !

दीनू : ऊपर ! मैंने समझा आपने कहा 'उधर' ! मैने साथ के बरामदे में रख दिया।

प्रतिभा : बात तो ठीक से सुनते नहीं हो और जो जी में आता है कर देते हो। जाओ, तुरन्त सब सामान ऊपर पहुँचा कर आओ इनके यहाँ।

दीनू : जी, बहुत अच्छा।

नीलिमा : यदि जगन को तुम्हारे साथ ही घूमना था तीभा तो उसने मुझे बता क्यों न दिया। और वहाँ प्रतिमा और नीहार...

प्रतिभा : यह साडी ब्लाऊज़ तुम ने माँग भेजे थे और इसका रग तुमने कहा था सन्यासियों जैसा है और मैने सोचा कि सादा ब्लाऊज़......

नीलिमा : (क्रोध से) मै वही पहन लेती किन्तु तुम....

प्रतिभा : (बड़े धैर्य से) चीख क्यों रही हो, सब सामान तो तुम्हें पहुँच ही गया है। रहा जगन, तो उसे भी पहुँचा दूँगी।

नीलिमा : मुझे क्या, मैंने तो प्रतिमा के लिए यह सब व्यवस्था की है।

(तेज तेज चली जाती है।)

प्रतिभा : (उसके पीछे जाते हुए) *अरे जा क्यों रही हो, यह साड़ी तो लेती जाओ।*

नीलिमा . *नही, मै अपने वाली ही पहन लूँगी।*

[मुडती है और मेज पर से अपनी साडी और ब्लाऊज वाला पैकेट लेकर चली जाती है।]

प्रतिभा . (वापस आते हुए) *ये लोग कितनी जल्दी मिथ्या अनुमान लगा लेते हैं!*

(प्रतिमा आती है।)

प्रतिमा . *दीदी, निगोडी इस आई-ब्रो-पेंसिल का उपयोग ही करना मुझे नही आता। ठीक तो कर दो मेरी भवें।*

प्रतिभा . *अरे तीमा . वाह! तुम तो ऐसे बन-सँवर रही हो जैसे नीहार की नहीं, तुम्हारी वर्षगाँठ है।*

प्रतिमा : *तुम भवें ठीक कर दो दीदी।*

प्रतिभा : *लाओ।*

(प्रतिमा को शीशे के सामने ले जाकर उसकी भवें ठीक करती है।)

प्रतिमा . *यह तुम्हारा ध्यान किधर है दीदी, सँवार रही हो या बिगाड?*

प्रतिभा : *मै सोचती हूँ कि जगन और तुम्हारी जोड़ी कैसी अच्छी रहे।*

प्रतिमा : *दीदी.... जाओ हम आप ही ठीक कर लेंगे सब!*

(तिनतिनाती हुई चली जाती है।)

प्रतिभा : *दोनों सुन्दर और स्वस्थ है, किन्तु दोनो दिमाग़ से कोरे!*

हरदत्त . (दरवाज़े पर दस्तक देते हुए) *भई मै आ सकता हूँ?*

प्रतिभा : *आ जाइए!*

हरदत्त : तीभा, तुम इतनी जल्दी ज्ञान से उकता जाओगी मुझे इस की आशा न थी।

प्रतिभा : मै ज्ञान साहब से उकता नहीं गयी।

हरदत्त : उकता नहीं गयीं ! (हँसता है— हैट खूटी पर टाँगता है और कौच में धँस जाता है) तुम एक प्रबल आत्म-वचना में ग्रसित हो तीभा। मैं तो भला तुम्हें भली भाँति जानता हूँ, किन्तु कोई अपरिचित भी तुम तीनों को देखता तो एक दृष्टि में भाँप लेता कि तुम ज्ञान से कितनी उकतायी हो।

प्रतिभा : आप मुझे भली भाँति जानते हैं हरदत्त साहब ?

हरदत्त : तुम्हें (तिपाई पर टाँगे पसराते हुए हँसता है।) मै तुम्हारे स्वभाव के प्रत्येक उतार चढाव से अभिज्ञ हूँ। जगन से बातें करने में तुम इतनी निमग्न थीं कि ज्ञान बेचारे का मुँह ज़रा सा निकल आया। यदि तुम्हें जगन ही के साथ यों व्यस्त रहना था तो ज्ञान बेचारे को साथ ले ही क्यों गयीं ?

प्रतिभा : जगन ने किसी दूसरे से बात करने का अवसर भी दिया हो ! और फिर मै तो अधिक समय आप ही के साथ रही।

हरदत्त : यह कोई नया अस्त्र नही तुम्हारा, तुम एक तीर से तीन शिकार करना चाहती हो।

प्रतिभा : तीन !

हरदत्त : (हँस कर) दो सही, क्योंकि मैं न तो तुम्हारे कृपा-कटाक्ष से जीता हूँ न उपेक्षा-दृष्टि से मरता हूँ।

प्रतिभा . श्रीमान तो.. ...

हरदत्त : और जैसा मैंने तुम से कई बार कहा है— पूर्णरूप से मै ही तुम्हारे सहचर्य्य के योग्य हूँ। किन्तु प्रतिभा, तुम एक प्रबल आत्म-वंचना में ग्रसित हो। तुम क्या, आत्म-वचना स्त्री के स्वभाव का एक साधारण गुण है।

प्रतिभा : आपकी दोनों पत्नियाँ सम्भवतः मरते दम तक आत्म वंचना में ग्रसित रहीं।

हरदत्त : मेरी पत्नियाँ !

प्रतिभा : या यों कह लीजिए कि आप ने उन्हे प्रबल आत्म-वंचना में फँसाये रखा। वे समझती रहीं कि उनका पति उनसे प्रेम करता है, उनका भक्त है और शायद मुझे भी आप इसी आत्म-वंचना में फँसा रखना चाहते हैं। आप कहते हैं कि आपको मुझ से प्रेम है।

हरदत्त : प्रेम (बेपरवाही से हँसता है।) कदाचित नहीं, किन्तु मै समझता हूँ—मैं तुम्हारा जीवन-साथी होने के योग्य हूँ।

प्रतिभा : यद्यपि आप की आयु......

हरदत्त : तुम से केवल दस वर्ष बड़ा हूँ।

प्रतिभा : या केवल पन्द्रह !

हरदत्त : पन्द्रह ही सही, किन्तु जीवन में दो शादियों के बाद मै जहाँ पहुँचा हूँ, तुम एक ही के पश्चात् वहीं पहुँच गयी हो।

प्रतिभा : अर्थात् . ?

हरदत्त : उकताहट, घुटन और शून्य हम दोनों जीवन में एक सा अनुभव करते हैं।

प्रतिभा : आप तो नहीं करते। सिनेमा और पिकनिकें .....

हरदत्त : शून्य को भरने का असफल-सा प्रयास हैं। जीवन से समझौता समझ लो। बेचैनी नहीं होती।

प्रतिभा ; बेचैनी !

हरदत्त : या यों कह लो, बेचैनी कम होती है। तीभा, हम दोनों उस अवस्था को पार कर चुके हैं जब मन रूमान चाहता है। यही तो मुसीबत है। तुम इस यथार्थ को नहीं समझतीं। मेरा सिनेमा और पिकनिकों में मन लगाना और तुम्हारा एक के बाद दूसरे व्यक्ति को अपने साथी के रूप में परखना वृथा है—नितान्त वृथा ! मैं सोच रहा हूँ, मुझे फिर विवाह कर लेना चाहिए। (कुछ क्षण दोनों मौन रहते हैं) और मै तुम्हें भी यही परामर्श देना चाहता हूँ। तुम्हें

भी अब कहीं टिक कर बैठ जाना चाहिए—किसी ऐसे स्थान पर जहाँ तुम्हारी थकी हुई आत्मा को शान्ति मिल सके।

प्रतिभा (हँस कर) और वह स्थान आपके अतिरिक्त किसी के पास नहीं।

हरदत्त . मै दो विवाह कर चुका हूँ और मेरे दोनों विवाह सफल थे ...

प्रतिभा : खेद है कि इस बात की साक्षी देने वाली अब इस संसार में नहीं।

✓ हरदत्त : तुम मेरी बात चाहे हँसी मे उडा दो, परन्तु तीभा, विवाह वास्तव मे एक कला है और जो लोग इस कला से अनभिज्ञ रह कर विवाह कर लेते है, वे उसे निभा नहीं पाते। जब वे उसे समझने लगते हैं तो जीवन के मधु में विष मिल चुका होता है, जिस से निष्कृति पाना उनके बस में नहीं होता। मैने काफी मूल्य चुकाकर विवाह की कला सीखी है। मेरे साथ रह कर तुम्हे पूरी शान्ति प्राप्त होगी। जगन और ज्ञान तो अभी बच्चे है।

(मन्दा दरवाजे से झाँकती है।)

मन्दा : बडी दीदी, जगन बाबू आये हैं।

प्रतिभा : आइए!

जगन (आते हुए) वही बात हुई न प्रतिभा देवी। दर्ज़ी ने बड़े आराम से एक ओर रख दिया था। मैं जाकर उसके सिर पर सवार न होता तो ब्लाऊज कभी समय पर न मिलता।

प्रतिभा : मै किस प्रकार आप का धन्यवाद करूँ? ठीक समय पर ले आये आप। लोग तो आने लगे होंगे। मै ज़रा कपडे बदल लूँ।

हरदत्त : यह तुम ने अच्छी भली तो पहन रखी है साड़ी।

जगन : मैने तो कहा था—आपके सुनहले बालों के साथ इसका बॉटल ग्रीन रंग अत्यन्त सुन्दर लगता है।

प्रतिभा : (बेपरवाही से) मै तड़क भडक पसन्द नही करती ।

जगन : तो फिर आपने क्या निश्चय किया ? बात यह है कि मार्ग में मुझे कुमार मिल गया, कुमार—इडीपेंडेंट-क्लब का मंत्री ! मैने उससे आपकी बात कही । वह यह सुन कर बडा प्रसन्न हुआ । मै सच कहता हूँ, आप निश्चय तो करें क्लब ज्वाइन (Join) करने का । बैडमिन्टन आपको बेहद सूट (Suit) करेगी । एक बार आप खेलना तो आरम्भ करें, फिर आप छोड़ न सकेंगी । मै आपको विश्वास दिलाता हूँ, इसी स्पोर्ट्स की कृपा से मै . .

प्रतिभा (उस की बात काट कर मुस्कराते हुए) नीलिमा आपको बुला गयी है । आप चलिए, उनसे कहिएगा हम अभी आ रहे हैं । मै ज़रा कपडे बदल आऊँ ।

हरदत्त : कपडे क्या बदलोगी, ठीक तो हैं ये कपडे ।

मन्दा : ज्ञान साहब आये हैं बडी दीदी ।

ज्ञान : (आते हुए) नमस्कार !

प्रतिभा : (ज्ञान साहब को देख कर) ज्ञान साहब ने कहा था—इसकी तड़क-भड़क बच्चों को फबती है ।

हरदत्त : ज्ञान साहब का सहारा क्यों लेती हो, अपने मन की अस्थिरता . . . .

जगन . (जो अभी तक वहीं है) किन्तु यह डिजाइन जो आपने चुना, यह भी खूब है !

ज्ञान : कोई नया डिज़ाइन चुना आपने ?

प्रतिभा : अभी यह ख़रीद कर लायी हूँ, आप ही ने तो कहा था ।

ज्ञान : हाँ, इस में सौम्यता है !

जगन : सौम्यता भी और चांचल्य भी, विरक्ति भी और आसक्ति भी ! पहनें तो सही । देखिएगा कितना खिलता है यह आप के रंग पर ! कितना सीधा-साधा और फिर कितना आकर्षक !

(स्वयं ही हँसता है ।)

प्रमिला : (दरवाजे से झाँक कर) बड़ी दी, नीला दीदी बुला रही हैं आप लोगों को।

हरदत्त : भई मैं तो सिनेमा देखने के लिए बुलाने आया था तुम्हे।

प्रतिभा . अभी सिनेमा का शो आरभ होने में समय है। ज़रा ऊपर चलिए, कुछ देर बैठ कर चले जाइएगा।

ज्ञान : मैं तो यही कहने के लिए आया था कि मुझे तो क्षमा ही कीजिएगा।

प्रतिभा : किन्तु प्रोफ़ेसर साहब !

जगन . (अत्यन्त असगत रूप से हँसते हुए) बैठिए, बैठिए आप भी ! अब जब प्रतिभा देवी अनुरोध कर रही हैं ..

प्रतिभा : आप लोग बैठिए, मैं साडी बदल कर अभी आयी।

(भीतर कमरे में चली जाती है।)

(पर्दा गिरता है।)

तीसरा दृश्य

[पर्दा एक डेढ घंटे बाद उसी कमरे में उठता है । कमरे में अँधेरा है । केवल खिड़की और आँगन से मध्यम सा प्रकाश आता है ।

पर्दा उठने के पश्चात् कुछ क्षण तक कमरा खाली रहता है । फिर प्रतिमा तेज़ तेज़ आती है और धम्म से कौच में गिर कर सिसकने लगती है । प्रमिला उस के पीछे धीरे धीरे आती है ।]

प्रमिला : *दीदी, छोटी दीदी !*

(प्रतिमा सिसकती है ।)

प्रमिला : *छोटी दीदी, बताओ तो सही क्या बात है ?*

(प्रतिमा सिसके जाती है ।)

प्रमिला : *दीदी, अब बता भी दो क्या हुआ ? आकर यहाँ अँधेरे में पड़ रही हो । ऊपर तो अब गाना होने वाला है । विमल बहन गायेंगी !* (उत्तर सुनने के लिए चुप रहती है) *किसी ने कोई तीखी बात कह दी तुम्हें ? . .. दीदी !*

(प्रतिमा सिसके जाती है ।)

प्रमिला : *दीदी देखो, मैं भी रोने लगूँगी ।*

प्रतिमा : *तंग न करो मीला । पड़ी रहने दो अकेली !*

प्रमिला : *यहाँ अँधेरे में, हुआ क्या आखिर ? बत्ती तो जलाओ !*

प्रतिमा : (लगभग रोते हुए) *मीला, मुझे तग न करो ।*

प्रमिला : *मैं जाकर कहती हूँ नीलिमा दीदी से कि छोटी दीदी आप लोगों से रूठ कर नीचे पड़ी रो रही हैं ।*

(भाग जाती है ।)

प्रतिमा : (भरे हुए गले से अपने आप) *नीलिमा दीदी . . . .एक वे हैं कि अपनी सगी बहन से भी बढ कर समझती हैं और एक ये हैं दीदी कि.. . .*

[फूट फूट कर रो पडती है। पृष्ठ-भूमि में नीहार की आवाज़ आती है।]

नीहार : तीमा,

(प्रवेश करती है और बिजली का बटन दबाती है।)

नीहार : प्रतिमा......क्या अपराध हो गया मुझ से ...मीला कहती है, तुम मुझ से रूठ कर .

प्रतिमा : नहीं, मुझे तुम से गुस्सा नहीं।

नीहार : नीलिमा दीदी ने कुछ कह दिया. . ..;

प्रतिमा : नहीं वे क्या कहतीं....

नीहार : तो फिर ...तो फिर......जगन भय्या .....

(प्रतिमा सम्हलते सम्हलते फिर सिसकने लगती है।)

नीहार : अरे क्या कह दिया जगन ने ?

प्रतिमा : कह दिया—उँह ! उन्हे कहने का अवकाश ही कब है ?

नीहार : क्यों ?

प्रतिमा : देख ही तो रही थीं। जब से ऊपर गये हैं, दीदी के आगे पीछे मँडला रहे हैं। देखते तक नहीं।

नीहार : एक जगन ही क्या, वहाँ सभी भँवरे बने हुए हैं।

प्रतिमा : तुम्हारा निर्मल भी तो. . .

नीहार : निर्मल (व्यथा से हँसती है) और नीला दीदी मेरी सगाई करना चाहती थीं उससे।

प्रतिमा : तुम भी तो कम पसन्द न करती थीं निर्मल को।

नीहार : हाँ, मैं भी मूर्ख बनी रही इतने दिन, पर जनाब कितनी बातें करते थे और क्षण भर में तीभा दीदी ने जादू कर दिया। एक बार जो उनके पास जाकर बैठे तो बस वहीं के रहे। फिर जो उन्होंने कुछ प्यास की शिकायत की तो गे उनके लिए शरबत लेने। मैं निगोड़ी रास्ते में पड़ गयी। ऐसे देखा जैसे कभी जान पहचान तक न थी।

प्रतिमा : मुझे दीदी पर क्रोध आता है।

नीहार : और मुझे निर्मल पर।

प्रतिमा . जिस व्यक्ति से मिलती हैं वही उनके गुण गाने लगता है। उसे विवश कर देती हैं कि वह उन्हीं के आस पास मँड-लाये और वे पागल, वे समझते है, वे उन्हें पसन्द करती हैं, उनसे प्रेम करती हैं, यद्यपि वे उनसे खेलती है—जैसे बिल्ली चूहे से!

नीहार . दीदी उन सब से घृणा करती हैं, वे उन सब को अत्यन्त तुच्छ समझती हैं। कई बार उनकी मुस्कानों के झीने पर्दे में से घृणा की यह झलक स्पष्ट दिखायी दे जाती है और उनके मस्तक पर नन्हें नन्हें तेवर पड़ जाते हैं। न जाने लोग उनके मुख पर अंकित घृणा को क्यों नहीं देख पाते!

प्रतिमा : तुम भूलती हो। वे उनसे घृणा नहीं करतीं, वे उन्हें पसन्द करती है। यह देख कर कि अपनी एक मुस्कान या एक कटाक्ष से वे इतने लोगों को पागल बना सकती हैं, उनके अहम् को सान्त्वना मिलती है—किसी की प्रसंशा करके, किसी की आलोचना कर, किसी की हँसी उडा कर और किसी को हँसी करने का अवसर देकर वे उन सब को अपने निकट एकत्र कर लेती हैं—उन सब पतंगो में वे चचल दीप-शिखा सी बनी रहती है।

नीहार : कदाचित तुम उनके साथ अन्याय कर रही हो। अपराध दीप शिखा का नही, पतगो का है। मैंने तीभा दीदी को भली-भाँति देखा है। उनका अपराध यह है कि उनके पास सौन्दर्य ही का नहीं, बुद्धि का भी अतुल भंडार है। यही कारण है कि सुरेश के साथ उनकी न बनी, यद्यपि शकुन्तला उसे पाकर अत्यन्त प्रसन्न है। वे किसी को बुलाने नही जातीं। लोग आप-से-आप उनके पास खिचे चले आते है। उनका अपराध यह है कि वे उन्हें धतकार नहीं देतीं। मन बुझा हुआ होने पर भी वे मुस्कराती रहती

हैं। यद्यपि धीरे धीरे उनके मुख पर घृणा की रेखाएँ बनती मिटती रहती हैं। निर्मल शायद समझ रहा है कि वह सौ मील की रफ्तार से मोटर चलाने अथवा शतरंज में बडे बडे खिलाडियों को मात देने की बड हाँक कर उन पर बडा प्रभाव डाल रहा है। यद्यपि वे उसे केवल बच्चा समझती है और उसकी बातें सुन कर योही शिष्टाचार-वश हँस देती है। मैं कहती हूँ उसे सूझी क्या?

प्रतिमा. तुम मानो चाहे न मानो, परन्तु मैं दीदी को जानती हूँ। आज वे जगन को लिये हुए दिन भर घूमती रहीं और फिर आते ही ऐसी छायी पार्टी पर कि किसी को बात करने का अवसर ही नहीं दिया।

नीहार: और मै इतने दिनो से अभ्यास कर रही थी गाने का। अभी पहला बन्द भी समाप्त न किया था जब वे ऊपर आयीं। बस फिर किसको रहती गाने की सुधि—धीरे धीरे सब उठ कर उनके पास जा बैठे। अब इसमें उनका क्या दोष? यह तो निर्मल और जगन.....

प्रतिमा: पर तुम ने गाना बन्द क्यों कर दिया?

नीहार: कोई सुन भी रहा था मेरा गाना!

(पृष्ठ-भूमि में निर्मल की आवाज आती है।)

निर्मल: नीहार!.... अरे भई कहाँ हो तुम?

प्रतिमा: (धीरे से) निर्मल है शायद, (जोर से) आ जाइए।

निर्मल: (भीतर आकर) तुम गाना छोड़ कर नीचे क्यों आ गयीं नीहार? ईश्वर की कसम ढूँढ ढूँढ कर थक गया तुम्हें। विमल आ गयी है गाने के लिए तैयार होकर.....

नीहार: मिल गया अवकाश किसी को गाना सुनने का!

निर्मल: अरे भई वह प्रतिभा देवी के आने से कुछ *disturbance* हुई थी, किन्तु मैं तो इस प्रतीक्षा में था......

नीहार: (व्यंग से) कि कब कुमारी नीहारिका देवी फिर अपना मधुर-गान आरम्भ करती है।

निर्मल . मैं पूछता हूँ, हो क्या गया है तुमको ?

नीहार . प्रतिभा दीदी के अनुरोध पूरे करने से मिल गया समय यह सोचने का आपको !

निर्मल : तो यह बात है (खोखला कहकहा लगाता है) मैं कहता हूँ, तुम भी पागल हो नीहार ।

नीहार : जी पागल !

(जगन शीघ्र शीघ्र आता है ।)

जगन : (खिसियानी हँसी के साथ) भई, आप यहाँ आकर बैठ गये और वहाँ आप लोगों को ढूँढा जा रहा है । क्यों नीहार, अतिथियों का अच्छा सत्कार करती हैं आप ?

नीहार : अवकाश मिल गया आपको भी अपने आस पास देखने का !

जगन : विमल की माता चाहती है कि विमल अपना गाना सुनाये । दो चार बार उन्होने जिक्र किया कि विमल अब अच्छा गाने लगी है । इस पर दो चार ने विमल जी से गाने का अनुरोध किया । पता चला कि नीहार और प्रतिमा गायेंगी तो विमल भी गायेगी । और यहाँ नीहार और प्रतिमा हैं कि नीचे कान्फ्रेन्स में व्यस्त है ।

(स्वय ही हँसता है ।)

निर्मल : मै भी इन्ही को बुलाने आया था, किन्तु ये दोनों यहाँ मुँह फुलाये बैठी हैं ।

जगन : आखिर क्यों ? कुछ बात भी हो !

प्रतिमा : (तिक्त मुस्कान से) कुछ नहीं । डाक्टर ने कहा है, कभी कभी मुँह फुला लिया करो, स्वास्थ्य अच्छा रहता है ।

जगन : प्रतिमा !

प्रतिमा : आप जाइए न, विमल जी का गाना सुनिये । हमारा मन ठीक नहीं ।

निर्मल : नीहार !

नीहार : तीभा दीदी की उपस्थिति में आप लोग अपने को इतना भूल गये। आपको इस बात का ध्यान तक न रहा कि कोई और भी बैठा है वहाँ।

निर्मल : उन्होने विशेषकर मुझे बुलाया था। और यह बडी अशिष्टता होती यदि मै किसी प्रकार की क्षमा माँगे बिना उनके पास से उठ आता।

नीहार : जी हाँ ! आपको बुलाया था। भला कोई दूसरा,था वहाँ बुलाने के लिए।

जगन : और भाई तीमा, मैने तुम से पहले ही कह दिया था। भई मुझे तो तुम्हारी दीदी पर अच्छा प्रभाव डालना था।

प्रतिमा : (व्यग्य भरी मुस्कान से) जी !

(पृष्ठ-भूमि में हारमोनियम बजता है।)

निर्मल : हार कर विमल जी शायद स्वयं ही गाने लगी हैं।

[बरामदे में प्रतिभा और ज्ञान के बातें करते हुए आने की आवाज आती है।]

प्रतिभा : मुझे चिढ़ है इन फिल्मी गानों से— तुच्छ, भावुक फ़िल्मी गाने— न जाने लोग कैसे बैठे बैठे सुना करते हैं इन्हें ?

निर्मल : (धीरे से) चलो चलो। प्रतिभा देवी को चिढ़ है फ़िल्मी गानों से और फिल्मी गीत गाने वालों से।

जगन : (हँसते हुए धीरे से) और फिल्मी गीत गाने वालियों से। चलो चलो इस आँगन से निकल चलो जल्दी।

[सब आँगन के दरवाजे से निकल जाते है। बरामदे की ओर से ज्ञान और प्रतिमा बातें करते हुए आते हैं।]

ज्ञान : आप तो फ़िल्मी गीत गाने का अनुरोध सुन कर ही उठीं, मैं तो सच जानिए, मन से बैठा ही न था। आपके लिए

चला गया था मै तो, नहीं मुझे बडी झुँझलाहट होती है ऐसी पार्टियों से। भला अब विमला की माता जी इस बात पर ज़ोर दे रही है कि सब बातें छोड कर विमला का गाना सुना जाय मानो किसी थर्ड-रेट फिल्म का थर्ड-रेट गाना गाकर वह श्रोताओं पर कोई बडा उपकार कर देंगी।

प्रतिभा : और मिसेज़ गुप्ता चाहती है कि उनकी लड़की का कथा-कली-डॉस देखा जाय। (हँसती है) कथाकली डान्स ! किसी ग़रीब क्लर्क से उसका विवाह हो जायगा और सारे का सारा कथाकली डान्स धरा रह जायगा।

(पृष्ठ भूमि में गाने की आवाज़ आती है।)

मुझे तुम से मुहब्बत रफ्ता रफ्ता होती जाती है।
कि ग़म बेदार होता है मसर्रत सोती जाती है॥

— : लीजिए, यह था गाना जिसे गाने के लिए विमला आतुर थी। क्षमा कीजिएगा ज्ञान साहब, आप यह दरवाज़ा बन्द कर दीजिए। मेरा तो जी उलझने लगता है ऐसी घटिया ग़ज़लों और गानों से। मै तो सचमुच उकता गयी हूँ यह मुहब्बत के गाने और मुहब्बत की बातें सुन कर।

ज्ञान : मुहब्बत एक सुकुमार और पवित्र भावना है, किन्तु इन फिल्मों ने इसे सस्ती और घटिया बना दिया है। मै प्रातः आपसे यही निवेदन कर रहा था, उच्च कोटि का प्रेम पवित्र और चिर-स्थायी होता है और पवित्र और चिर-स्थायी प्रेम इतना वासना-मय नहीं होता।

प्रतिभा : (हँस कर) कुरूप किन्तु सुशील लड़की ..

ज्ञान : (खिसियानी हँसी के साथ) वह तो मैने एक उदाहरण दिया था। वास्तव में मेरा अभिप्राय यह था कि जिस प्रेम की नींव सहचर्य पर खडी हो— सुन्दरता और कुरूपता का प्रश्न नहीं—उसी में आध्यात्मिक प्रेम के बीज होते हैं। कदाचित.. ...जो मैं कहना चाहता हूँ, उसे ठीक व्यक्त

नहीं कर पाता। देखिए, जैसे हम एक मुद्दत से मिलते जुलते है। एक दूसरे के स्वभाव को जानते और पसन्द करते है ....

प्रतिभा : (अपने विचारों की रौ में) मै सोच रही थी कि यह घटिया फिल्में किस प्रकार हमारे जीवन को खोखला किये जा रही है। बडे से बडा कट्टर-पंथी अपने लड़के लडकियों को ये फिल्में दिखाने ले जाता है और जब उसके बच्चे फिल्मी गाने गाते हैं तो सदाचार, धर्म, मान-प्रतिष्ठा की तलवारें लेकर उनके सिर पर जा सवार होता है। क्या युवा लड़कियाँ और क्या युवा लड़के—सब इसी फ़िल्मी-प्रेम के बहाव में बहे जा रहे है। अभी पार्टी मे जगन और निर्मल ने मुझ पर इसी प्रकार का फिल्मी-प्रेम प्रकट करने का प्रयास किया।

ज्ञान : (आश्चर्य से) फिल्मी !

प्रतिभा : फिल्मी का शब्द तो उन्होंने प्रयुक्त नहीं किया, किन्तु उनके हाव भाव, उनका कहने का ढग वैसा ही था।

ज्ञान : दोनों ने एक ही बार ?

प्रतिभा . नही, जगन ने पहल की। मै दोपहर ही से देख रही थी कि वह मुझ से कुछ कहना चाहता है। यथा सम्भव उसे टालती रही। अवसर मिलते ही उसने कह डाला......

ज्ञान : क्या कहा उसने ?

प्रतिभा : (मुस्कुराते हुए) पहले तो कुछ हकलाया। फिर जो कुछ उसने कहा, उसका तात्पर्य यह था कि उसे बहुत देर से मुझ पर श्रद्धा है। जब से उसने प्रतिमा से मेरे सम्बन्ध में सुना है, वह मन ही मन मुझ से प्रेम करने लगा है। उसने नीलिमा से विशेष आग्रह करके मुझे बुलाया है और वह मुझ से मिल कर इतना प्रसन्न हुआ है जितना कभी नहीं हुआ।

ज्ञान : (हँसते है) वाह !

प्रतिभा . (अपनी बात को जारी रखते हुए) कि मैने उराका काफी पीने का निमन्त्रण स्वीकार करके जीवन भर के लिए उसे अपना बना लिया है। इस पार्टी से नीहार को इतनी प्रसन्नता नहीं हुई जिसकी वर्ष गाठ है; निर्मल को इतना हर्ष नही हुआ जो उसका भावी मॅगेतर है; किसी को इतना उल्लास नहीं हुआ जितना उसे हुआ है ।

ज्ञान : आपने उसे क्या उत्तर दिया ?

प्रतिभा . (हॅसते हुए) मैने उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा— तुम बडे बरखुरदार हो, किन्तु मैं तुम्हारी सगति के योग्य नहीं। यह सच है कि मै स्पोर्टस की खबरें पढ़ना पसन्द करती हूँ और टेस्ट-मैचों से भी मुझे दिलचस्पी है, किन्तु यह दिलचस्पी केवल बौद्धिक है। मेरे स्वभाव के उतार-चढ़ाव से तुम चार दिन में उकता जाओगे।

ज्ञान : (तनिक और जोर से हॅसते हुए) वाह—!

प्रतिभा : प्रतिमा को उससे प्रेम है और यद्यपि उसने मुझ से कहा नहीं, किन्तु मै जानती हूॅ। सो मैंने जगन से कहा कि उसे प्रतिमा तक ही अपना प्रेम सीमित रखना चाहिए और यदि सम्भव हो तो उसी को बैडमिन्टन, पिग-पाँग या टेंबल-टैनिस की चैम्पियन बनाने की चेष्टा करनी चाहिए।

ज्ञान : (प्रसन्न होकर ठहाका मारते हुए) वाह ! और निर्मल......?

प्रतिभा · उसका बस चलता तो वह फ़िल्मी अभिनेताओं की भॉति पूरे सुर और लय में अपना प्रेम प्रकट करता, पर उसने फिल्मों से चुने हुए कुच्छेक वाक्य कहने की ही कृपा की। जब मैंने उसे बताया कि वह अभी बच्चा है और नीहार उससे रूठ कर नीचे चली गयी है तो उसका मुख कानों तक लाल हो गया और वह भाग -गया (हॅसती है।) अब जाकर शायद नीहार पर अपने प्रेम का रौब गाँठ रहा होगा।

ज्ञान : (दीर्घ-निश्वास लेता है।) परन्तु प्रतिभा देवी, सिनेमा देखने से

एक लाभ तो हो जाता है।

प्रतिभा . क्या ?

ज्ञान : प्रेम प्रकट करना आ जाता है।

प्रतिभा : (चुप रहती है।)

ज्ञान : अब मै हूँ, लाख चाहता हूँ अपने भाव व्यक्त करूँ ...

प्रतिभा : आप !

ज्ञान : हर बार सुन्दर शब्द ढूँढता हूँ, किन्तु मुझे वे बडे घटिया लगते है। मै आप से प्रेम करता हूँ—यह कहना मुझे आकाश की ऊँचाइयों में उडते उड़ते सहसा धरती पर आ गिरना प्रतीत होता है। तिस पर भी मै कई बार कहना चाहता हूँ—प्रतिभा, मै आप से प्रेम करता हूँ—असीम प्रेम करता हूँ !

प्रतिभा : यह पार्टी का प्रभाव है, तेज़ गर्म चाय का, वहाँ के वातावरण का या फिर जगन और निर्मल की मूर्खता का ?

ज्ञान : प्रतिभा ! आप नहीं जानतीं, मैं कब से यह कहने के लिए आकुल हूँ, किन्तु मुझे कभी शब्द नहीं मिले, (सहसा जैसे उसे शब्द मिल रहे हों) जब मैं आपके इन सुनहले बालो को देखता हूँ, जिनमें हल्की हल्की लहरियाँ ऊषा के प्रशस्त प्रागन में छोटी छोटी बदलियों सी लगती हैं, जब मैं आपके नयनों की अथाह गहराइयों मे झाँकता हूँ तो मुझे अनुभव होता है......

प्रतिभा : ज्ञान साहब !

ज्ञान : मुझे अनुभव होता है जैसे एक विचित्र पुलक मेरी नस नस मे दौड़ रहा है। जैसे मेरी समस्त अन्यमनस्कता धुल निखर कर, स्वच्छ निर्मल उल्लास में परिणित हो गयी है।

प्रतिभा . आज ही आप ने कहा था—हम लोग प्रेम के टाइफ़ाइड से मुक्त हो गये हैं।

ज्ञान : प्रतिभा।

प्रतिभा : तो क्या मै अब तक धोखे में रही ? तो क्या जगन, निर्मल और आप में कोई अन्तर नहीं ? मै तो आप को उन सब से कही ऊँचा, कही योग्य, कहीं समझदार समझती थी। मैं तो आपको बुद्धिवादी.. .

ज्ञान : (उठते हुए) मुझे क्षमा कर दो प्रतिभा।

प्रतिभा : मुझे क्या पता था कि आप भी उसी स्तर पर उतर आयेंगे।

ज्ञान : मैं लज्जित हूँ। अपनी इस मूर्खता के लिए क्षमा चाहता हूँ। नमस्कार !

(शीघ्र शीघ्र चला जाता है।)

प्रतिभा : (उसके पीछे जाते हुए) ज्ञान साहब !......ज्ञान साहब... !!

(दरवाज़े को पूर्णतय: खोल देती है)

— : ज्ञान साहब !

[प्रोफ़ेसर ज्ञान नहीं आते, पर गाने की ध्वनि फिर आने लगती है। विमला पूर्ववत गा रही है :]

यह गम से कुछ तआरुफ़ आज कल ही का नहीं मेरा।
अज़ल से जिन्दगानी बोझ ग़म का ढोती जाती है॥

— . ओह ! ये लचर फ़िल्मी गाने !

[ज़ोर से दरवाज़ा बन्द करके कौच पर आकर थकी थकी सी धँस जाती है।]

— : कहीं मुक्ति नही—इस साधारण, भावुक, घटिया वातावरण से कहीं मुक्ति नहीं।

(उठ कर कमरे में घूमती है।)

— : प्रोफ़ेसर नीलाभ ! (दीर्घ-निश्वास लेती है।) प्रोफ़ेसर नीलाभ ! उनके बिना मुझे कहीं शान्ति न मिलेगी।

काश वे इतने ऊँचे शिखर पर न बैठे होते ! काश वे इतने विरक्त न होते !

(टेलीफ़ोन उठाती है । बाहर से हरदत्त की आवाज़ आती है)

हरदत्त : (बाहर से) *प्रतिभा !*

प्रतिभा : (चोंगा रख देती है) *आइए !*

हरदत्त : *शो अभी अभी समाप्त हुआ । मैंने कहा जाते जाते नीहार को बधाई देता चलूँ । पार्टी समाप्त हो चुकी ?*

प्रतिभा : *खाना आदि तो हो चुका । अब गाना हो रहा है । पार्टी में तो आप गये नहीं . . .*

हरदत्त : *फ़िल्म आरम्भ हो जाता ।*

प्रतिभा : *कौन सा फ़िल्म था ?*

(आकर कोच पर बैठ जाती है ।)

हरदत्त : *मुहब्बत ।*

(उसी कौच पर, किन्तु तनिक सट कर बैठता है ।)

प्रतिभा : *तो शायद यह उसी फ़िल्म का गाना है— मुहब्बत हमको तुमसे रफ़्ता रफ़्ता होती जाती है ।*

हरदत्त : *क्यों ?*

प्रतिभा : *वही घटिया और भावुक गाना । आप को तो पसन्द आया होगा ।*

हरदत्त : *हाँ, मुझे तो पसन्द आया । मैं कहता हूँ प्रतिभा, तुम इस साधारणता से घृणा क्यों करती हो ? इन सीधे साधे सामान्य भावों से दूर क्यों भागती हो ? यह जीवन और इस जीवन का समस्त कोलाहल इसी साधारणता पर तो अवलम्बित है । तुम इससे सदा दूर भागती हो, किन्तु जीवन की गति तो इसी के दम से है । मुझे यह साधारणता पसन्द है । रूमान-पसन्द की भाँति, मैं पास*

की वस्तुओं से दूर नही भागता (हँसता है) रूमान-पसन्द सदैव अपनी पत्नी को छोड कर दूसरे की पत्नी से प्रेम करेगा वर्तमान पत्नी के बदले पहली पत्नी के गुणों का रोना रोयेगा। वह सदैव उस वस्तु के पीछे भागेगा जो उसे प्राप्त नहीं।

प्रतिभा : हूँ !

हरदत्त : और न ही सदेहशील बुद्धिवादी की भाँति मै प्रत्येक वस्तु से असन्तोष प्रकट करता हूँ (हँसता है।) बुद्धिवादी प्रत्येक वस्तु से असन्तुष्ट रहता है, प्रत्येक वस्तु में दोष निकालता है। रूमान-पसन्द को तो शान्ति प्राप्त हो भी सकती है, किन्तु बुद्धिवादी के भाग्य मे शान्ति नहीं।

प्रतिभा : (मुस्करा कर) श्रीमान अपनी गिनती किन में करते हैं ?

हरदत्त : मैं साधारण, नार्मल व्यक्ति हूँ। मै न रूमान-पसन्द हूँ न बुद्धिवादी ! मै तो यथार्थवादी हूँ।

प्रतिभा : (व्यग्य से) यथार्थवादी !

(ज़ोर से हँस देती है।)

हरदत्त : (कुछ उत्साह से) किन्तु तुम रूमान-पसन्द भी हो और बुद्धिवादी भी। रूमान-पसन्दों की भाँति तुम जीवन से, जीवन की दैनिकता से डरती भी हो और उस असन्तोष को भी प्रकट करती हो जो बुद्धिवादियों का विशेष गुण है। देखो प्रतिभा, नन्हीं नन्हीं खुशियों से दूर न भागो। इन्हीं में जीवन को ढूंढो। इन्हीं में तुम्हे शान्ति मिलेगी।

प्रतिभा : शान्ति, इस घटिया वातावरण में शान्ति ?

हरदत्त : तुम्हें किसी के प्रेम की आवश्यकता है !

प्रतिभा : (तिक्त- मुस्कान के साथ) प्रेम की !

हरदत्त : (ज़रा आगे बढता हुआ) तुम्हे किसी के सुदृढ हाथों की आवश्यकता है जो तुम्हें तुम्हारे स्वप्न-ससार से इस संसार में खींच लायें। मै अभी जो फ़िल्म देख कर आया हूँ, उस

में भी एक तुम्हारे ही जैसी नायिका का चरित्र प्रस्तुत किया गया है।

(आगे बढ़ता है। प्रतिभा तनिक पीछे खिसक जाती है।)

प्रतिभा : मेरे ही जैसी ?

हरदत्त : निपट तुम्हारे जैसी नहीं, किन्तु एक गुण तुम दोनों में समान-रूप से विद्यमान है। वह भी तुम्हारी तरह प्रेम को घृणा की दृष्टि से देखती है। वास्तव में वह प्रेम की अभिव्यक्ति से झिझकती है।

प्रतिभा : मै प्रेम की अभिव्यक्ति से झिझकती नहीं, मुझे प्रेम हो भी किसी से।

हरदत्त : कभी तुम नीलाभ को चाहती थीं।

प्रतिभा : नीलाभ को......कभी ! (हँसती है, फिर दीर्घ-निश्वास छोड़ती है।) मन चिरकाल से शुष्क-शून्य मरु बन चुका है। कहीं यदि घास के तिनके थे, तो वे भी कब के मुरझा गये हैं

हरदत्त : (तनिक और आगे बढ़ते हुए) यह भी एक भ्रम है तम्हारा। तुम अब भी चाहती हो कि तुम से प्रेम किया जाय। अब तुम और भी चाहती हो कि तुम से प्रेम किया जाय। बिल्कुल उस फिल्म की नायिका की भाँति, तुम्हें भी किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो तुम्हारे इस संकोच को दूर कर दे। बरबस तुम्हें अपने आलिंगन में बाँध ले।

(सहसा प्रतिभा को अपनी बाहों में भींच लेता है।)

प्रतिभा : (उस के बाहुपाश से अपने को मुक्त करने की चेष्टा करते हुए) हरदत्त साहब !

हरदत्त : (उसे आलिंगन में भींचते हुए) मै तुम से प्रेम करता हूँ तीभा ! मैंने कई बार अपने आप को समझाने की चेष्टा की है कि मैं तुम्हें केवल पसन्द करता हूँ, तुम से प्रेम नहीं करता, किन्तु यह आत्म-वचना है। मुझे तुम से प्रेम है

तीभी, तुम से असीम प्रेम है ! तुम मेरी चेतना पर, मेरे समस्त अस्तित्व पर छायी जाती हो ।

प्रतिभा : (उस के बाहुपाश से स्वतन्त्र होकर हाँपती हुई उठ खड़ी होती है ।) हरदत्त साहब !

हरदत्त : (बाहें फैलाये उस की ओर जाते हुए) मै जानता हूँ, तुम कहोगी— ये सस्ते, भावुक, फिल्मी- वाक्य हैं, किन्तु प्रतिभा ये अनादि है—चाँद तारों की भाँति अनादि— साधारण, किन्तु सनातन ! तुम इन से भागती क्यो हो ?

प्रतिभा : (पूर्ववत काँपते हुए) हरदत्त साहब, वही रहिए । आप पागल हो रहे हैं । मेरा विचार था आप समझदार है, जीवन की कटुताओं ने आप को गम्भीर बना दिया होगा, किन्तु आप तो अभी तक बच्चे है ।

हरदत्त : (बढी हुई बाहें गिर जाती हैं) प्रत्येक व्यक्ति अपने आवरण के भीतर मात्र एक बच्चा है । प्रतिभा, तुम समझती हो. ....

प्रतिभा : (क्रोध के कारण रुधे हुए गले से) चले जाइए आप यहाँ से ! चले जाइए !! आप की उपस्थिति मे मेरा दम घुट रहा है, मेरा सिर चकरा रहा है । चले जाइए ! आप चले जाइए !!

हरदत्त : तीभा !

[कुछ पग बढ़ता है, किन्तु प्रतिभा के आग्नेय-नेत्र देख कर रुक जाता है ।]

प्रतिभा : (चीख कर) जाइए !

हरदत्त : मै जाता हूँ, पर शान्त-मन से मेरी बातों पर....

प्रतिभा : (चीख कर) जाइए !

हरदत्त : तुम्हारी इच्छा किन्तु .....

(कंधे झटकटाता हुआ चला जाता है ।)

प्रतिभा : (थकी हुई सी कौच पर गिर जाती है।) उफ ! कितना बचपन है इस व्यक्ति में (दीर्घ-निश्वास लेती है) इतने दिन से यह आता है और मै इसे जान तक न सकी (कुछ क्षण मौन रहती है, फिर धीरे-धीरे अपने आप बदबदाती है) —प्रत्येक व्यक्ति अपने आवरण के भीतर मात्र एक बच्चा है ! क्या अपने खौल के भीतर मै भी मात्र बच्ची हूँ—बच्ची—जो चाँद को चाहती है और खिलौनों से जिसे सान्त्वना नही मिलती ! (फिर दीर्घ-निश्वास लेती है।) किन्तु चाँद बहुत ऊँचा है—बहुत दूर है—नीलाभ—नीलाभ—उफ़ !

(मुख को दोनों बाहों से छिपा कर सिसकने लगती है।)

(पर्दा गिरता है।)

छठा बेटा

पात्र

पडित बसन्त लाल—रेलवे के रिटायर्ड पदाधिकारी

डाक्टर हँसराज हरिनाथ (हरेन्द्र) देवनारायण कैलाशपति गुरु नारायण दयालचन्द	पडित बसन्त लाल के छै लडके

मा	पडित बसन्त लाल की पत्नी
कमला	पडित जी की बहू, डाक्टर हस राज की पत्नी

दीनदयाल	पंडित जी का मित्र
चाननराम	दूर के रिश्ते मे पडित जी का भाइ

हरचरण मुड्डू	नौकर

डा० हसराज का मकान (जो वास्तव में डा० हसराज का किराये का मकान है) कुछ इतना बडा नहीं। पूरा मकान भी यह नहीं। एक बडी इमारत का केवल एक भाग है— तीन कमरे हैं (यद्यपि शब्द 'कमरे' उन १२ X ११ फुट की दो, तथा १० X ८ फुट की एक कोठरी के लिए अधिक आदरसूचक प्रतीत होता है।) एक स्नानगृह है (जो सीढियों के नीचे बच जाने वाली छोटी-सी जगह में, तख्ता रूपी किवाड लगा कर बना दिया गया है और जहा नहाने में दक्ष होने के लिए कुछ दिन अभ्यास करना अनिवार्य है।) इसी स्नानगृह के साथ छोटा सा रसोई-घर है— बस यही साढे तीन अथवा पौने चार कमरे डा० हसराज के इस मकान में है।

ऐसे ही चार भाग इस इमारत में और हैं। पूजीवादी मनोवृत्ति से विपन्न कृषकों को बचाने के लिए, जब पजाब सरकार ने साहूकारा बिल की कैंची का आविष्कार किया और चाहे अस्थायी रूप ही से हो, किसानों के फंदे काट दिये, तो उस मनोवृत्ति ने नये फदे ढूढ निकाले। यद्यपि उन फदों के शिकार अब कृषक न होकर निम्न-मध्य-वर्ग के नागरिक थे। इन्ही फदों को मध्यवर्गीय शिक्षित समुदाय की भाषा में पोर्शन्ज़ (*Portions*) अर्थात् बडी इमारतों के किराये पर चढ़ाये जाने वाले भाग कहा जाता था। और पंजाब की राजधानी में ऐसी इमारतों की कमी न थी, जिन में ऐसे दस दस फंदे निर्मित थे।

पर्दा डा० हसराज के मकान, अर्थात् पोर्शन के बरामदे में खुलता है। बरामदा भी इस पोर्शन के अनुरूप ही है। रसोई-घर तथा स्नान गृह इस के दायीं ओर को है, सामने १२×११ फुट के दो कमरे है, जिन का एक एक दरवाज़ा बरामदे में खुलता है। इन दोनों सामने के कमरों में से दायें हाथ के कमरे और स्नान गृह के मध्य एक मार्ग है, जो इमारत के दूसरे पोर्शनों के पास से होता हुआ इमारत के बड़े दरवाज़े को जाता है। १०×८ फुट का कमरा बरामदे के बायीं ओर को है, और आजकल वह डा० साहब के सब से छोटे भाई गुरु की अध्ययनशाला का काम दे रहा है। रसोई घर का और इस का दरवाज़ा आमने सामने है।

यह बरामदा घर में एक महत्व का स्थान रखता है और प्रायः इस से खाने, बैठने और सोने के कमरों का काम लिया जाता है। बरामदा डाइनिंग रूम है— इस का प्रमाण रसोई-घर से तनिक हट कर बिछी हुई दो चटाइया देती हैं, जिन पर घर के सब लोग बैठ कर अपनी बारी से खाना खाते हैं, किन्तु जिस पर इस समय (मैदान ख़ाली देख कर) गणेशवाहन श्री मूषक जी महाराज मटरों अथवा टमाटरों पर दात तेज कर रहे हैं। ड्राइग रूम अर्थात् बैठने के कमरे के नाते एक बैत का हलका सा मेज़ और बैत ही की दो कुर्सियाँ बरामदे के मध्य पडी है। मेज़ पर एक क़लम-दवात भी रखी है। स्लीपिंग रूम—सोने के कमरे— के नाम पर तनिक बायीं ओर को हट कर, गुरु के कमरे के समीप, एक चारपाई बिछी हुई है।

समय क्या है, इस का अनुमान ही लगाया जा सकता है। बात यह है कि अपने समस्त महत्व के होते इस बरामदे को अभी तक एक क्लाक भी प्राप्त नहीं हुआ और जो छोटा टाइमपीस गुरु की अध्ययनशाला में मेज पर टिक-टिक किया करता हैं, उस की आवाज यहा सुनायी नहीं देती। इसलिए समय का पता रसोई-घर से आने वाली सुगधि,

अथवा मेज कुर्सियों से लेकर चारपाई तक एक बड़ी सी तिकोन बनाने वाली धूप ही से लगाया जा सकता है।

लेकिन फ़रवरी का आरम्भ है, इसलिए धूप पर विश्वास नहीं किया जा सकता। दिन बड़े हो रहे हैं, जहा धूप आने पर पहले दस बजते थे, अब वहा आठ बजे ही धूप आ जाती है, इसलिए इस ओर से निराश होकर हमें रसोई-घर की ओर नाक तनिक फुला कर सूंघने का प्रयास करना होगा। पकती हुई सब्ज़ियों की सुगंधि धूप की पार्श्व-भूमि के साथ बता रही है कि अभी नौ, पौने नौं से अधिक समय नहीं हुआ।

बरामदे में इस समय निस्तब्धता छायी हुई है। वास्तव में गुरु की आज पहली दो घटिया खाली है और वह अपने कमरे में अध्ययन कर रहा है, नहीं तो इस समय तक वह आकाश-पताल एक कर दिया करता है और बेचारे बरामदे के फ़र्श को, जो अहिंसा के मामले में सोलहों आने महात्मा गाधी का अनुयायी है, कई बार उसके पदप्रहार, अथवा यों कहिए कि बूटप्रहार को सहन करना पडता है। डाक्टर साहब भी जो इस समय तक—"मैं कहता हूँ, मैंने एक पेशेंट को समय दे रखा है", या "कभी समय पर खाना मुझे मिलेगा या नहीं" अथवा "जल्दी करो नहीं तो बिना खाये पिये मैं चला जाऊंगा" आदि वाक्यों के गोले रसोई-घर पर बरसाते हुए बरामदे में घूमा करते हैं, इस समय इमारत के बाहर चाचा चाननराम के साथ घूम रहे हैं। चाचा डाक्टर साहब के सगे चचा तो नहीं, शरीके में से हैं, लेकिन अपना कोई चचा न होने से डाक्टर साहब और उनके सब भाई उन्हें चचा ही सा मानते हैं। इसीलिए उन पर अपना कुछ अधिकार समझते हुए, एक विशेष मिशन को लेकर वे उनके पास आये हैं और उन्हीं की खातिर डाक्टर साहब ने नौकर को दुकान पर भेज दिया है कि यदि कोई रोगी आ जाय तो उन्हें तत्काल सूचित किया जाय।

बरामदे में निस्तब्धता ऐसी है कि चटाई पर 'किट किट' करते हुए चूहे की आवाज साफ़ सुनायी देती है। इस निस्तब्धता को हम उत्सुकता भरी निस्तब्धता कह सकते हैं। ऐसा मालूम होता है कि बरामदे के स्तम्भ, मेज, कुर्सिया, चारपाई, यहा तक कि धूप भी कुछ सुनने के लिए उत्सुक है, दर्शकों की उत्सुकता भी, लगता है, क्रोध की सीमा को पहुँचा चाहती है, इसीलिए शायद डाक्टर हसराज चचा चाननराम के साथ इस निस्तब्धता और उत्सुकता को मिटाते हुए, स्नान गृह के पास वाले दरवाजे से बातें करते दाखिल होते हैं।]

डा० हसराज : *ये सौगंधें* (व्यग से हँसते हैं।) *भूले से कही गयी बात का इनसे अधिक मोल होता है।*

चाननराम : *मुझसे उन्होंने प्रण किया था।*

डा० हंसराज : (व्यग्य से) *सौगंध भी खायी होगी।*

चाननराम: (चुप!)

(चारपाई पर जाकर बैठ जाते हैं।)

डा० हंसराज : (दोनों हाथ कमर पर रख कर शब्दों पर जोर देते हुए) *यही तो मैं कहता हूँ। जब पहले के प्रण और सौगंधें अभी तक पालन की बाट देख रही हैं तो अबकी कब पूरी होंगी।*

[हसते है और जैसे उन्होंने इस बात से चाचा को निरुत्तर कर दिया हो, आराम से कुर्सी पर बैठ जाते हैं और टाँगें मेज़ पर रख लेते हैं।]

चाननराम : (जो चाचा हैं, आखिर यों हारने वाले नहीं) *पर भाई, समय भी तो अब बदल गया है।*

डा० हसराज : (बेपरवाही से सिर हिला कर, जैसे इस बात का उत्तर तो गढ़ा गढ़ाया है) *पर स्वभाव तो समय के साथ नहीं बदलता।*

[जिनकी प्रतिज्ञाओं, सौगंधों और स्वभाव का जिक्र हो रहा है वे डा० हसराज के पिता लाला बसन्त लाल के अतिरिक्त कोई दूसरे नहीं। अभी अभी वे रिटायर हुए हैं और

पाँच छै सहस्र का ऋण चुका कर प्राविडेंट-फंड से जो रुपया बच गया था, वह दो चार सप्ताह ही में उन्होंने सट्टे, जुए और शराब की भेंट कर दिया है और गुरदासपुर छोड़ कर यहाँ अपने बड़े लड़के के पास आ गये हैं। जीवन में दूरदर्शिता किस चीज का नाम है, यह उन्होंने कभी नहीं जाना। छै जिसके लड़के हों, उसे भविष्य की चिन्ता हो, इससे विचित्र बात वे और कोई नहीं समझते रहे। बड़े गर्व से, सीना फुला कर, वे मित्रों के सामने सदैव कहते आये हैं कि यदि हरेक लड़का दिन भर टोकरी ढो कर भी एक रुपया साँझ को कमा लायगा तो छै रुपये हो जायँगे, फिर मैं क्यों चिन्ता करूँ? लड़कों को टोकरी ढोने की नौबत नहीं आयी, क्योंकि किसी न किसी प्रकार, अपने पिता की मद्यपता के होते हुए भी उन्हों ने शिक्षा प्राप्त कर ली है। डा० हंसराज सब से बड़े हैं और डाक्टर हैं। दूसरे सुपुत्र लेखक हैं—एक छोटा-सा प्रेस तथा मासिक-पत्र चला रहे हैं, नाम हरि नाथ है, किन्तु हरेन्द्र कहाना अधिक पसन्द करते है। तीसरे देव नारायण, छावनी के डाकखाने में काम करते है। चौथे अबोहर में टिकट क्लक्टर लगे हुए हैं। नाम कैलाश पति है। कैलाश के पति और इनमें इतना ही अन्तर है कि ये तीसरी आँख से नहीं देखते। पाँचवाँ गुरु है, बी ए. में पढ़ता है, परिश्रमी है और उसके बडा आदमी बनने के स्वप्न सब लिया करते हैं। डा० हंसराज किसी आगामी सहायता के विचार से नहीं तो इसी ख्याल से कि वे अपने रोगियों के सामने इस बात का उल्लेख बड़े गर्व-स्फीत स्वर में कर सकेंगे कि वह जो सब-जज या मैजिस्ट्रेट या डिप्टी है, मेरा ही भाई है, मैंने ही उसे पढ़ाया है, अपने इस पोर्शन का १०×८ फुट का वह कमरा उसे दिये हुए हैं और उसके खाने का खर्च भी सहन किये जा रहे हैं। छठा और सब से छोटा लड़का पिता के व्यवहार से तंग आकर जो भागा तो उसने चार

वर्ष से कोई खोज-खबर नहीं दी। दो चार गालियों के साथ—'वह साला मेरा लड़का ही नहीं'—इतना कह देने के सिवा, पिता ने उसका कभी ज़िक्र नहीं किया। भाई भी लगभग उसे भूल चुके है इस लिए कि यदि वह होता तो उसकी पढाई आदि की व्यवस्था भी उन्हें ही करनी होती (और यदि अब वह कहीं आ जाय तो डा० साहब तो इतने प्रसन्न हों कि एक दिन उनके घर खाना न पके) हाँ माँ कभी कभी रो लिया करती है। नाम भी भला-सा था—दयाल चन्द या कृपालचन्द, किन्तु इन पाच वर्षों में घर वालों को वह भी भूल-सा गया मालूम होता है।—इसलिए दयाल चन्द को (क्योंकि उसका कुछ पता नहीं) छोड़ कर शेष सब टोकरी नहीं ढो रहे, परन्तु उनके पिता को चिन्ता अवश्य करनी पड रही है और चचा चाननराम उनकी ही सिफ़ारिश करने आये हैं—रिटायर हो गये हैं, पास पैसा नहीं रहा। अब कहां रहें, यह समस्या है। चचा चाननराम का विचार है कि डाक्टर साहब के पास ही उनका रहना श्रेयस्कर है, क्योंकि गुरदासपुर में रहेंगे तो उनके मित्रादि आ मिलेंगे, यहाँ रहेंगे तो कुछ सुधरे रहेंगे परन्तु डाक्टर साहब ने टागें हिलाते हिलाते निर्णय कर लिया है और वह निर्णय चचा चाननराम को सुनाने के लिए टागें नीचे करके वे उठ कर बैठ गये है।]

डा० हंसराजः *देखिए चचा जी, मैं डाक्टर हूँ। मेरी पोज़ीशन है। मेरे यहाँ बडे बड़े पदाधिकारी आते है। पिता जी की गुज़र यहाँ न होगी। (तीन चार दिन उन्हें यहाँ आये हुए हो गये हैं और इस बीच में मेरी रात की नींद हराम हो गयी है और मैं सोचने लगा हूँ कि यदि कुछ देर और वे मेरे पास रहे, तो मेरी सब प्रेक्टिस चौपट हो जायगी) भाग्य से आज आप आ गये है। देव और गुरु भी यहीं है, हरेन्द्र को मैंने बुलावा भेजा है (कैलाश किसी समय भी पहुँच सकता है। कल उसका पत्र आया था कि वह कल प्रातः की*

गाड़ी से आयगा (कलाई पर घड़ी देखते हुए) *गाड़ी कब की स्टेशन पर पहुँच चुकी होगी और* .. ।

चाननराम : *परन्तु....*

डा० हंसराज : *परन्तु नहीं चचा जी । इस बात का निर्णय आज हो ही जाना चाहिए । मै अपने उत्तरदायित्व से कन्नी न काटूगा, किन्तु मेरे यहा सदैव के लिए उनका रहना नही हो सकता ।*

चाननराम : *आखिर...... .*

डा० हंसराज : (जैसे वे डा० बिधान चन्द्र राय से क्या कुछ कम हैं) *मै डाक्टर हूँ । मेरी पोज़ीशन है मेरे यहा बडे बडे पदाधिकारी आते हैं । मैं वेटिग रूम में तिनका तक तो रहने नही देता* (खड़े हो जाते हैं ।) *और ये कीचड भरे जूते लिये आ जाते हैं ।*

[कुसी से चटाई तक और चटाई से कुर्सी तक दोनों हाथ पतलून की जेबों में डाले एक चक्कर लगाते है— फिर रुक कर :]

मैं नौकर तक को मैले कपडे पहन कर दुकान मे आने की आज्ञा नही देता और वे टख़नों तक ऊंची-धोती —वह भी आधी—मैली-सी खुले गले की क़मीज पहने, नंगे सिर चले आते है और वैसे ही कौच में आकर धँस जाते हैं ।

[फिर कुर्सी से चटाई तक और चटाई से कुर्सी तक चक्कर लगाने लगते है ।

गुरु अपने कमरे से हाथ में एक खुली पुस्तक लिये तेज़ तेज़ दाखिल होता है । दोनों टकराते टकराते बचते हैं । दोनो एक दूसरे को थामते है और डाक्टर साहिब कुर्सी तक अपना चक्कर पूरा करने और गुरु रसोई-घर को छूने चल देता है]

गुरु : (रसोई-घर के दरवाजे को छूकर) *भाभी*......(दरवाजे को खोल कर सिर अन्दर करते हुए) *मै कहता हूँ, मेरे जाने में मात्र एक घटा रह गया है।*

[कुछ क्षण उसी तरह खडा रहता है फिर सिर बाहर निकाल कर और मुड कर—जब कि डाक्टर उसी तरह सिर नीचा किये, पतलून में हाथ डाले कुर्सी से चटाई की ओर जा रहे है —]

— : *लीजिए पिता जी आटे की बोरी लेने गये हैं, तो आ चुका आटा।*

(बेजारी से सिर हिलाता है)

[गुरु पतला दुबला, पांच फुट साढे पाच इच का युवक है—रग गेहुआ, बाल लम्बे और चमकीले, लेकिन माथा बिल्कुल छोटा—खड़े कालरों वाली कमीज और पतलून के बावजूद, शकल-सूरत से ज़रा भी मालूम नहीं होता कि यह डिप्टी कमिशनर मैजिस्ट्रेट, सब-जज छोड मुख्तार भी बन सकेगा। किन्तु भाग्य अपनी विभूतिया देते समय शक्ल सूरत कम ही देखता है। बहुत से सुन्दर मातहत युवक इस बात को भली-भाँति समझते हैं। और इस समय तो डाक्टर साहब भी भूल गये हैं कि उनका यह भाई कभी डिप्टी होने जा रहा है, क्योंकि वे उसकी बात का उत्तर दिये बिना फिर कुर्सी की ओर चल देते हैं। जहाँ कि चचा ने इस बीच में उनकी आपत्ति का उत्तर सोंच लिया है :]

चाननराम : *कपडों का तो हो सकता है। उन्हें तुम लोग नये कपड़े......*

डा० हसराज : *'कदापि नहीं हो सकता। सफ़ाई का स्वभाव भी दूसरी आदतों की भाँति एक समय चाहता है, बनते बनने बनता है। उनमें और हममें आधी सदी का अन्तर है।*

गुरु : (भावी आई० सी० एस०) वे मूछें रखते हैं, जिन पर नीम्बू टिक सके और हमारे ऐसा भी मालूम नहीं होता कि दैव ने उन्हें कभी पैदा भी किया था। वे सिर घुटा कर रखते है—चटियल मैदान की भाँति, और हम दो दो महीने इस मामले में नाई को कष्ट नहीं देते, वे कमीज और तहबद पहन अनारकली में घूम सकते हैं और हम सोते मे सूट उतारने से हिचकचाते है।

[चाननराम 'तुम अभी बच्चे हो तुम्हारी यह चचलता क्षम्य है' के से भाव में हँसते है।]

डा० हसराज : (छोटे भाई की सहायता को आते हुए) हँसी की बात नही चचा जी ! बचपन का स्वभाव एक दिन में नही बदल सकता। एक दिन में वे अपने पुराने सस्कारों को छोड़ कर सभ्य-समाज के आचार-व्यवहार नहीं सीख सकते। वे पिताओं और पतियों के ईश्वरीय-अधिकारों (*Divine Rights*) में विश्वास रखते है। उनके विचार में लड़का चाहे डाक्टर छोड़ गवर्नर भी क्यों न हो जाय, पिता के मिलने पर तत्काल उसे उनके चरणों में झुक जाना चाहिए, फिर चाहे वे बाज़ार मे अथवा स्टेशन के प्लेटफार्म पर ही क्यों न खड़े हों और कितने भी प्रतिष्ठत मित्र क्यों न उन के साथ हों।

गुरु : और पिता की गाली सुनकर उसे चुप खड़े रहना चाहिए अथवा ऐसे मुस्कराना चाहिए जैसे उस पर फूल बरस रहे हों।

चाननराम : माता पिता की गलियाँ तो घी शक्कर सी मीठी होती हैं। जिसे ये नही मिली वह जीवन में एक विभूति से वंचित रह गया है।

(दोनों भाई ज़ोर से क़हक़हा लगाते हैं)

चाननराम : (अप्रकृतिस्थ हुए बिना) रही प्रणाम की बात तो भाई माता पिता के चरणों में झुकना संतान की अपनी प्रतिष्ठा है।

"मुझे उन मित्रों की मानसिक अवस्था पर तरस आता है जो इस पर नाक-भौ चढ़ाते है।

गुरु : 'चाहे बाजार हों अथवा स्टेशन का प्लेटफार्म ?

चाननराम : "कही भी क्यो न हो, तुम तो भला उनके लडके हो और उनके चरण ही छूने पर इतनी बातें बना रहे हो, मेरे साथ जानते हो क्या हुआ ? दीनदयाल .

डा० हसराज : (जेब से कुजियों का गुच्छा निकालकर उसे अगुलियों पर घुमाते हुये) दीनदयाल. ...!

चाननराम : हाँ वही, एक दिन उसके साथ बाज़ार में पण्डित जी चले जा रहे थे। आते आते सब्जी-मण्डी के ठेकेदार की जेबें गर्म करते आये थे। मैने दोनों को हाथ जोड़कर 'नमस्ते' की। कहने लगे—'नहीं', झुककर प्रणाम करो। मेरे साथ मेरे मित्र भी थे, किन्तु मै चुपचाप उनके चरणों पर झुक गया।

गुरु : छिः।

चाननराम : फिर कहने लगे, इनके भी पाँव छुओ !

डा० हसराज : (गर्जकर, जैसे उनसे ही कहा गया हो) दीनदयाल के ?

चाननराम : पर मै झुक गया और वे इतने ही में प्रसन्न हो गये।

डा० हसराज . (क्रोध से दाँत पीसते हुये) उस जेबकटे के पेरों पर, जिसे यदि मेरा बस चले तो.. .. ...

[तिपाई को ठोकर मारते हैं, जैसे वही दीनदयाल है, सियाही की दवात फर्श पर गिर पडती है। नौकर को आवाज देते हैं।]

— : हरचरण हरचरण !

[एक छोटा सा नौकर रसोई से प्याज छीलता छीलता निकलता है।]

नौकर : जी, उसे तो आप ने दुकान पर भेजा था।

डा० हसराज : (चपत लगा कर) तुझ से किसने कहा, इस तिपाई पर दवात रखा कर, उठा सब फर्श खराब हो गया है।

(नौकर दवात उठाने लगता है।)

चाननराम : दवात रहने दे बेटा, पहले कपड़ा लेकर फर्श साफ़ कर डाल !

[नौकर भाग जाता है और फिर गीला कपड़ा लाकर फर्श साफ़ करता है।]

गुरु : (रसोई-घर की ओर देख कर) माँ अभी मुझे कितनी देर और प्रतीक्षा करनी पडेगी ?

[मा रसोई घर से हाथ पोंछती हुई आती है—दुर्बल तथा कृशकाय, चेहरे पर दुखों ने गहरे चिह्न छोड़ दिये है। पुराने फैशन की कमीज और सुथनी पहने है, सिर पर चादर है— बस सब मिला कर वह ऐसी है, जैसी एक मद्यपायी की स्त्री निरन्तर उसके साथ सर्दी गर्मी झेलने, उसकी और उसके बच्चों की सेवा करने से बन जाती है।]

मां : हमारी ओर से तो बेटा कोई देर नहीं। सब्जी तो बस तैयार है आटा खत्म हो गया था और बनिये के घर रात को तीन बच्चे एक साथ पैदा हुए।

गुरु : तीन...एक साथ ...पिता, पुत्र तथा पौत्र, तीनों के ?

मां : नहीं नहीं केवल पिता के— दो लडकियाँ और एक लड़का।

डा० हसराज : उस काटे से व्यक्ति के यहाँ ? और पत्नी भी तो उसकी तिनका सी है !

मां : इस लिए उसकी तो दुकान बन्द थी, तब उनको भेजा कि सब्ज़ी-मडी के चोक से जाकर आटा ले आयँ।

गुरु : सब्ज़ी-मडी के चौक से ! तब तो मैं शौक से होटल में खाना खा सकता हूँ।

डा० हसराज : मुझे डर है कि कहीं सभी को आज होटल में न जाना पडे। और कोई नहीं था आटा लाने के लिए ?

मा : मैने तो बहुतेरा कहा कि गुरु या देव ले आयगा। कहने लगे—मै यहाँ बैठा बैठा क्या कर रहा हूँ और कमला ने नोट उनके हाथ में दे दिया।

डा० हसराज : नोट ! कितने का।

मा : दस का !

(डाक्टर साहब कुर्सी में धँस जाते हैं।)

— . (निराश-भाव से) इस कमला को तो कभी समझ न आयगी।

कमला . (सामने के कमरे से निकलती है।) मैंने कहाँ दिये। उन्होंने तीन बार कहा—लाओ बहू रुपये दो, लाओ बहू रुपये दो, लाओ बहू रुपये दो; गुरु को पढ़ने दो; उसकी परीक्षा समीप है; मै बस अभी ले आऊँगा।

(बड़े रौब से मटकती हुई चली जाती है।)

डा० हसराज : (अचानक उठ कर और दोनों मुट्ठियाँ इकट्ठी भींच कर, महान विटप की भाँति झूलते हुए, शब्दों पर जोर देकर) यह नहीं होगा, यह नहीं होगा। देखिए चचा जी, कुछ रुपये महीना मै दे सकूँगा— जो भी आप मेरे जिम्मे लगा देंगे, किन्तु रहना उनका यहाँ नहीं हो सकता।

चाननराम : लेकिन पिता पुत्र......कर्तव्य . .

डा० हसराज . (विटप पर झंझा का दबाव और भी अधिक हो जाता है और वह और भी झूलता है) मै पुत्र के कर्तव्यों से भली-भाँति परिचित हूँ, किन्तु पिता का कोई कर्तव्य ही नहीं, यह मैं नहीं मानता। सात वर्ष के कडे परिश्रम के बाद मेरी प्रेक्टिस कुछ चलने लगी है, मै उसे यों बर्बाद नही कर सकता। परसों जब वे पिये हुए आये और बाज़ार ही से उन्होंने अधिक मद्य-पता के कारण थरथराती हुई अपनी कर्कश आवाज़ में पुकारा "ह सू"! तब मेरा तो दिल धक धक कर उठा था। बाहर आकर देखा— बूटके तस्मे खुले हैं, धोती की कोर धरती पर लटक रही है, कमीज का गिरेबान फटा हुआ है

और पगडी बगल में है (विटप पर तूफ़ान का जोर कम हो जाता है ।) *किस्मत अच्छी थी कि उस समय दुकान पर कोई पेशेन्ट न था, बडे धैर्य के साथ मै उन्हें घर ले आया ।*

[ऐन उस वक्त बाहर से देव आकर चुपचाप दरवाजे की चौखट से पहलू के बल खडा हो जाता है । आयु अट्ठाइस वर्ष से अधिक नहीं, लेकिन डाकखाने की बैठक ने उसे बत्तीस, पेंतीस का बना दिया है । चेहरे की दो-चार रेखाएं 'डिलिवरी', 'बुकिंग', 'सार्टिंग' की विरसता का पता देती है, जिन विभागों में कि वह क्रम से अब तक काम करता आया है । दाढी मूछें बडी हुई है, इस लिए नहीं कि उसे ये पसन्द हैं, बल्कि इसलिए कि उसे हजामत का समय नहीं मिला । हँसमुख है, किन्तु अब उसकी हँसी ऐसे ही ठिठुरी हुई प्रकट होती है, जैसे शरद् के बादल भरे आकाश में पीली श्वेत सी सूरज की मुस्कान । किसी को भी उसके आने का पता नहीं चलता, इसलिए डाक्टर साहब अपनी बात जारी रखते हैं ।]

— : *और पुकारने का ढग तो देखो—न हंसराज, न हंस* (नकल उतारते हुए) *हसू* (जो विटप था वह पौधा सा होकर धरती पर लेट जाता है ।) *और मैं दो बच्चों का बाप हूँ और डाक्टर कहलाता हूँ ।*

[व्यगमयी वेदना के भार से हँसते हैं । वहीं चौखट के साथ खड़े खड़े देव के चेहरे पर वही शरद् का सूरज क्षण भर के लिए मुस्कराता है ।]

चाननराम : (वहीं जमे हुए) *माता पिता बच्चो को उनके बचपन का नाम.....*

डा० हसराज : *नहीं चचा जी, यह मुझ से न होगा, आप देव से क्यों नहीं कहते ।*

[दरवाजे में सूरज का तेज क्षण भर के लिए प्रखर हो उठता है ।]

देव : *जिससे उनकी एक दिन तो दूर, एक पल के लिए भी नहीं बन सकती।*

[सब चकित से उसकी ओर देखते है । शरद् का सूरज उनके समीप आ जाता है ।]

डा० हंसराज : (खिन्न हुए बिना) *तुम दिन भर दफ्तर में रहते हो और दफ्तर भी तुम्हारा समीप नहीं कि वे पहुँच जायँ, पूरे छै मील है— नहर के पार . .*

देव : *लेकिन रात को तो मैं घर आता हूँ और रात ही को साधारणतया मेरे इन बालो को देख कर उन्हें गुस्मा आया करता है। जब पिता जी बहराम के स्टेशन पर थ, तब मेरा दुर्भाग्य कि एक दिन मै सध्या की ट्रेन से वहाँ चला गया। रेलवे गार्ड के सामने ही उन्होंने मुझे बालो से पकड लिया—'ये हीजडो की भाँति बाल क्यों बना रखे हैं तुमने. . ' और पुरुषत्व और पुसत्व पर एक भाषण झाडते हुए मेरी जो गत बनायी.. ..*

चाननराम : (अपनी धुन के जो पक्के हैं, स्थिरि, अचल जहाँ बैठे है वहा से हिले नहीं।) *तब तुम बच्चे थे, परन्तु......*

देव : *परन्तु जिनके लिए डाक्टर साहब अभी तक 'हँसू' है, उनके लिए बेचारा देव. ....*

(शरद् का वही सूरज हँसता है ।)

— : *और फिर रात ही को उन पर गाने की धुन सवार होती है। एक बार मुझ से कहने लगे—"तुम गाओ"। अब मैं क्या गाता? विवश हो चिघाड़ने लगा। आँखों में मेरी आँसू भर आये। कहने लगे—अच्छा गाते हो, प्रेक्टिस जारी रखो, तुम्हें लखनऊ के म्युज़िक कालेज में दाखि़ल करा देंगे।*

[गुरु ठहाका मारकर हँस पडता है । हँसराज डाक्टरों की भाँति हँसते हैं, देव के चेहरे से मात्र बादल तनिक से

हट जाते है, चचा चाननराम कदाचित इसलिए नहीं हँसते कि बच्चों की हँसी में क्या शामिल हों ..

[हरचरण एक बिस्तार और बैग उठाये प्रवेश करता है।]

डा० हसराज : कैलाश आ गया ?

हरचरण : दुकान पर है जी, मैने कहा—आप तनिक बैठें कोई रोगी ही आ जाता है। आप उसे बैठाइए . ...

डा० हंसराज : मैं जाता हूँ।

माँ : (रसोईघर का दरवाजा खोलकर) गुरु तनिक साइकल लेकर जाना तो। वे तो आये नहीं। देखो तो कहाँ ठहर गये ? नहीं जा तू ही वहाँ से कुछ आटा ले आ, कैलाश भी तो आगया है।

गुरु : होंगे कहाँ ? सब्ज़ी मडी में एक ही तो जगह है उनके जाने की।

[हरिनाथ (हरेन्द्र) प्रवेश करते है— हाथ में कुछ कागज लिये और फर्श पर इधर उधर देखते और कुछ ढूढते हुए। धोती कुर्ता और उस पर चादर पहने हैं, बाल तनिक लम्बे है और पाँवों में चप्पल हैं।]

हरिनाथ : मैं पूछता हूँ, रात को मै इधर तो नहीं रख गया।

(तिपाई के नीचे ऊपर देखते है।)

चाननराम : क्या ढूँढ रहे हो, क्या चीज़ गुम हो गयी।

हरिनाथ : बडे परिश्रम से लिखी थी।

(फिर इधर उधर देखते है।)

देव : क्या था भाई ?

हरिनाथ : एक कविता थी। देर से मै लिख रहा था, कितनी अच्छी बन रही थी, मुझे तो याद भी नहीं।

चाननराम : तनिक बैठो कविता फिर लिख लेना।

हरिनाथ : पर मुझे तो वह भेजनी थी। कम्पोजिटर बेकार बैठे है, साइकल पर भागा आया हूँ।

चाननराम : मैं साइकल पर देव को भेज दूँगा। इन पन्द्रह मिनटों में कुछ बिगड न जायेगा। मै तो बुलवाने ही वाला था तुम्हें। अच्छा हुआ कि तुम आगये।

हरिनाथ मै कहता हूँ, वह गुम कहाँ हो गयी, वह कविता—छै महीने हो गये मुझे उसकी 'थीम'* सोचते।

गुरु : कोई प्रबधकाव्य शुरु किया था क्या ?

हरिनाथ . नही जी एक फुलस्केप के दोनो ओर लिखी हुई थी।

(हताश सा बरामदे के मध्य खडा हो जाता है।)

देव : यह आपके हाथ में क्या है ?

हरिनाथ . (चौक कर खिसियानेपन से) वाह ! अरे मै इस बीच में इसे बराबर हाथ में लिये फिरा हूँ !

देव . (कविता उसके हाथ से लेकर) आप तनिक बैठें चाचाजी को आप से दो बातें करनी है। कविता मै अभी नौकर के हाथ भिजवा दूँगा।

(चला जाता है, हरिनाथ कुर्सी पर बैठ जाता है।)

चाननराम : देखो तुम्हारे पिता अब रिटायर होगये है। मै नहीं चाहता, वे घर पर रहें। वहाँ उनके पराने यार-दोस्त हैं, वहाँ वे न सुधरेंगे !

हरिनाथ : वहाँ वे सुधर चुके। शादीराम, रामरत्न, बनारसीदास, बंसीलाल — सब मतवाले, लेकिन दूसरों के माल पर, हमारे पिता जी अपना घर फूंक कर तमाशा दिखाने वाले।

चाननराम : यही तो मैं भी कहता हूँ। उन्हे आवश्यकता है अच्छी सगति की और फिर ऐसे व्यक्ति की, जो उनकी अच्छी तरह देख भाल कर सके। गुरु और देव तो बच्चे हैं। हंसराज का मन उनसे न मिलेगा। कैलाश के सम्बन्ध में मैं कह

* थीम = (*Theme*) आधार-भूत-विचार !

नहीं सकता । वह अक्खड तबीयत का आदमी है । मै उसे कहूँगा अवश्य, परन्तु तुमसे मुझे बडी आशा है । तुम समझदार हो, साहित्यिक हो, मानव के गुण दोषों से परिचित हो तुम्हारे पास ...(हरिनाथ चौकता है ।) . वे कुछ सम्हल .

हरिनाथ : (दार्शनिक भाव से तनिक हँस कर) अब वे क्या सम्हलेगे ।

चाननराम : तुम्हारे पास रह कर

हरिनाथ : मेरे पास, परन्तु मै तो सात्विक व्यक्ति हूँ । वे ठहरे खाने पीने वाले आदमी । वे चौथे रोज मुर्ग भूनने वाले और फिर मदिरा (मुँह बनाता है, जैसे नाम ही से उसका चित्त मिचलाने लगा हो) मै तो पास भी नहीं बैठ सकता, मै तो उस कमरे में बैठना तक सहन नहीं कर सकता ।

[जैसे शराब के नाम ही से उसका दम घुटने लगा हो, उठ कर घूमता हुआ, धोती के पल्ले से हवा करने लगता है ।

डा० हसराज और कैलाश पति जोर जोर से बातें करते प्रवेश करते है ।]

कैलाश : बख्शो बी बिल्ली चूहा लँडूरा ही भला । मुझसे उनकी एक दिन, एक दिन क्या, एक पल नही पट सकती । मै उनकी एक गाली तक नहीं सुन सकता । गाली तो दूर एक बार उन्होंने मुझे *Idiot कहा था और मैने तीन दिन खाना न खाया था . .

डा० हंसराज : अरे भई अब पिछली बातो को.... .

कैलाश : आप भूल सकते है वे सब बाते, मै नहीं भूल सकता । याद है न आपको, उस दिन उनकी कितनी ज्यादती थी । घर में खाने को नहीं था और वे बीस रुपये (जो माँ उधार लाया थी) किसी श्रेष्ठ-व्यक्ति को दे आये थे (तनिक जोश से) उनके लिए प्रत्येक व्यक्ति श्रेष्ठ है । केवल घर वालों को

*Idiot=मूर्ख

छोड़ कर। और जब मैंने आपत्ति की की थी तो तलवार लेकर मेरी ओर दौड़े थे। (नौकर को आवाज देता है।) ओ मुडू ...ओ मुडू... ..

(हरचरण रसोई-घर से प्लेट धोता धोता आता है।)

— : साबुन और तेल स्नानगृह में रख दे। यह लम्बी यात्रा और सम्मा सट्टा लाइन की यह धूल! मैं तो वर्बर लग रहा हूँगा।

[छै भाइयों में यद्यपि वह चौथा है तो भी वह अपने उस कवि और उस क्लर्क भाई से बड़ा लगता है। चौड़े जबड़े, टेढे मेढे दान्त और आखों में हिंस्र ज्वाला— बिखरे हुए, धूल भरे बालों पर—जिनसे वह सत्य ही बर्बर लगता है—हाथ फेरता हुआ वह इधर उधर घूमता है।]

थाननराम : उठकर, उसके पास जाकर, उसके कधे पर हाथ रखते हुए) परन्तु कैलाश .....

कैलाश : परन्तु नहीं चचा जी। मै कुछ नहीं कर सकता! मैं पूछता हूँ—उन्होंने हमारा कितना ख्याल रखा है? बे-बाप के बच्चे हम से अच्छी तरह पलते होंगे और फिर उनके अत्याचार.. ...

थाननराम : परन्तु बेटा .. .

कैलाश : (घूमते हुए दात पीसकर) अब आप चाहें भूल जायँ, मैं जीवन भर नहीं भूल सकता वे सब बातें! पता हैं न आपको? टाइफाइड से मै मृत-प्रायः हो रहा था। मल्खू पोते, से बुआ का लड़का बैजनाथ आया था। तब इन्होंने क्या ऊधम मचाया था।

थाननराम : पुरानी बातों को......

कैलाश : पर मेरे लिए तो वे सब नयी हैं। इतनी सी बात थी न कि बैज नाथ ने आते ही पचास रुपये माँ को दिये कि वह उन्हे अपने पास रखे। जाते जाते वह उन्हें ले जाता। दीवाली के दिन थे। पिता जी को न जाने कैसे उनकी गंध

मिल गयी। लगे मा से रुपये माँगने। उसने कहा कि मेरे पास एक भी रुपया नही। आप ही कहिए दूसरे के रुपयो को वह कैसे उन्हें दे देती। उठा कर जलती लालटैन इन्होंने उसके दे मारी। मैंने रोका तो तलवार उठा लाये। मेरे सिरहाने लम्बी छुरी वाला हटर था। सौभाग्य से बीच-बचाव हो गया, नही तो किसी का खून हो जाता।

चाननराम : (निराश होकर) परन्तु बेटा, अब तो न उनका वह स्वभाव है, न वह शरीर। दम खम भी उनमें वह पुराना नहीं। अब ये सब बातें वे कहाँ कर सकते हैं. ....!

डा० हंसराज : (हसकर) पर स्वभाव तो वही है।

गुरु तथा देव : (दोनों एक साथ बोलते हुए) वाणी की कठोरता तो वही है। शराब पीने की आदत तो वही है।

[नशे में चूर प० बसन्तलाल प्रवेश करते हैं। पाँव लडखडा रहे हैं। सिर नगा है। कमीज के बटन खुले हैं। तहमद धरती पर लटक रहा है। एक पाँव से जूता गायब है। हाथ में एक पुर्जा सा है (जो लाटरी का टिकट है) आवाज थरथरा रही है......]

बसन्तलाल : ओ हसू...... ..

[डा० हंसराज आग्नेय-दृष्टि से उनकी ओर देखते हैं और आग भरे स्वर में कहते हैं :—]

डा० हंसराज : आप तो आटा लेने गये थे।

बसन्तलाल : साला .....आटा क्या ?......मै तीन लाख रुपये का टिकट ले आया हूँ। तुम्हें विलायत भेज दूँगा।

(कुर्सी पर बैठते बैठते लुढक जाते हैं।)

डा० हंसराज : (उठ कर और रसोई-घर की ओर देखते हुए चीख कर) मै कहता न था। और सब मर गये थे क्या ? ये नौकर किस मर्ज़ की दवा होते हैं। भेज दिया इनको चीज़ें लाने के लिए। अब पड़े भूखों मरो......

गुरु : (अपने कमरे को भागता हुआ) *मेरे तो कालेज का समय हो गया है। अब रोटी .....*

[कमरे से गायब हो जाता है। कमला रसोई-घर से मटकती हुई निकलती है।]

कमला : *नौकर को और कोई काम नहीं करना होता क्या? आप इतने लोग क्या करते रहते हैं? तिनका तक तो कोई तोड़ता नहीं!*

(दूसरे कमरे में चली जाती है।)

देव : *मै भी चलूँ, मुझे कैंट पहुँचना है।*

(जिधर से आया था उधर से चला जाता है।)

कैलाश : *ओ मुंडू, साबुन तेल रखा है या नहीं?*

माँ : (रूंआसी सी शक्ल लिये रसोई-घर से झाँकती है) इन्हें उठाकर चारपाई पर तो लिटा दो। धरती पर पड़े है।

बसन्तलाल : (उठने का यत्न करते हुए) *कौन साला हमें उठा सकता है... हम...स्वयं उठेंगे ....!*

[उठते हैं, किन्तु लडखडा कर गिर पडते है। चाननराम और डा० हसराज उन्हें उठा कर बिस्तर पर लिटा देते है।]

(पर्दा गिरता है।)

(कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है।)

[बरामदे में निस्तब्धता है। धूप की बड़ी तिकोन अब एक छोटी सी आयत बन गयी है। रसोई-घर से सुगंधि अभी तक उठ रही है, किन्तु, मात्र सब्जी-तरकारी से क्योंकि भूख नहीं मिट सकती, इसलिए शायद डाक्टर साहब स्वयं आटा लेने गये है। गणेश-वाहन श्रीमूषक जी महाराज फिर कहीं से आगये हैं और इस प्रकार इधर उधर विचर रहे हैं, जैसे राजधानी से भागा हुआ अधिपति पुनः अपना राज्य पाने पर! चटाइयाँ खाली हैं, कुर्सियाँ खाली हैं, केवल चारपाई पर पंडित बसन्तलाल पड़े खर्राटे ले रहे हैं। लाटरी का टिकट उनका धरती पर गिर पड़ा है, किसी ने उसको उठाने का कष्ट नहीं किया और वे सो रहे हैं और उनके खर्राटे बरामदे की निस्तब्धता को और भी निस्तब्ध बना रहे हैं।]

(पर्दा फिर गिरता है।)

(पर्दा फिर उठता है ।)

[वही बरामदा और वही सामान । केवल इतना परिवर्तन हुआ है, कि चटाइयों के स्थान पर चरखा बिछा है, जिसके साथ बैठी हुई मा ऊन कात रही है । (गर्मियों में काती जायगी तो सर्दियों में काम आयगी, इसीलिए) साथ में एक दूसरी पीढी है । वह शायद कमला की है, क्योंकि उस पर एक किरोशिए से बुना जाता मेजपोश पडा है । चारपाई वैसे ही बिछी है और उस पर कोई सो भी रहा है । खर्राटों का स्वर चरखे की 'घू घू' में शायद सुनायी नहीं देता । सोने वाला शायद पंडित बसन्तलाल है, किन्तु शायद वे नहीं हैं, क्योंकि पर्दा उठने के पल भर बाद ही वे पूर्ववत् बग़ल में पगडी दबाये, खुले गले की कमीज और फ़र्श पर घिसटती हुई आधी धोती की कोर से बेपरवाह, मूछों पर ताव देते हुए झूमते-झामते प्रवेश करते हैं । उल्लास उनके चेहरे पर फूटा पडता है और पाव उनके धरती पर ठीक नहीं पडते ।

आते ही पगडी को कुर्सी पर फेंक कर खड़े झूमते हैं और नौकर को आवाज़ देते हैं— स्वर उनका थरथरा रहा है, जैसे कि साधारणतया नशे में थरथराने लगता है ।]

बसन्तलाल : *मुन्दू, ओ मुन्दू !*

[हरचरन रसोई-घर से भागा हुआ आता है। हाथ सने हुए है। शायद बर्तन मलता हुआ उठकर भाग आया है।]

हरचरन : *जी !*

बसन्तलाल : (दस रुपये का नोट फेंकते है ।) *जा भाग कर बाजार से कैंची की एक डिबिया ले आ ।*

[नोट देख कर मा चौकती है, सूत का तार टूट जाता है, और वह यों ही चरखे की हत्थी घुमाये जाती हैं। नौकर नोट उठा कर जाता है। पडित बसन्तलाल अपनी पत्नी को सम्बोधित करते है— वैसे ही झूमते हुए, हुलास के पखों पर जैसे उडते हुए :—]

— : *मै कहता हूँ हंसू की मा, माग लो आज जो कुछ मुझ से माँगना चाहती हो ! मै तुम्हारी हरेक इच्छा आज पूरी कर दूगा ।*

[कुर्सी में धँस जाते हैं। टागे तिपाई पर रख लेते है— मा चरखा कातना छोड देती है और अविश्वास से हँसती है।

पडित बसन्तलाल टागें फिर नीचे करके उसकी ओर मुडते है—]

— : *तुम समझती हो, मै हँसी करता हूँ। मै सत्य कहता हूँ। मुझे तुम मदमत्त मत समझो। माँगो !*

(उठ कर खड़े हो जाते है, झूमते और लडखडाते हैं।)

— : *माँगो मै सब कुछ दूँगा ।*

माँ : (विषाद से हँसती है) *मैं क्या माँगूँगी ।*

(सूत का तार जोडने का प्रयास करती है।)

बसन्तलाल : *गहना, कपडा, सुख, आराम कुछ भी माँगो, तुमने आयु भर मेरे साथ दुख पाया है, कहो, तुम्हें गहने कपड़ों से लाद दूँ ।*

माँ : (स्वर आर्द्र हो जाता है) *मैंने बहुतेरे गहने कपडे पहन लिये* (सजल हँसी से) *अब तो यही अभिलाषा है कि आपके चरणों में संसार छोड़ दूँ ।*

बसन्तलाल : *संसार छोड़ दो पगली !* (हवा को हाथ से चीरते है और इस प्रयास में गिरते गिरते कुर्सी पर धँस जाते है ।) *ससार-सुख के उपभोग का अवसर तो अभी आया है ।* (सहसा आँखें भर कर) *मैंने तुम्हे बडे दुख दिये—मारा पीटा, गहने कपडे से तग रखा* (सिसकने लगते हैं ।) *पैसे पैसे को मोहताज रखा, बनवाकर तो क्या देता उल्टा तुम्हारी चीज़ें तक बेच डालता रहा* (सहसा आँखें पोंछकर जोश से) *किन्तु अब मै सब बातों की कसर निकाल दूँगा । मै अब तुम्हे इतना सुख दूँगा* (और भी जोश से) *इतना सुख, कि तुम्हें अधिक की इच्छा न रहेगी । गहने कपडे, जितने चाहो पहनो ! जिस तीर्थ की चाहो यात्रा करो !! और जितने ब्राह्मणों और ब्राह्मणियों को चाहे खाना खिलाओ !!! —कितनी देर से तुम तीर्थ-यात्रा करने को तरस रही हो, देखो कोई तीर्थ रह न जाय, फिर न कहना कि अमुक स्थान को देखने की अभिलाषा रह गयी ।*

[मा निर्निमेष किन्तु अविश्वासभरी-दृष्टि से चुपचाप उनकी ओर देखे जाती है ।]

— : *हाँ कोई ऐसा तीर्थ नही, कोई ऐसा स्थान नहीं जो मै तुम्हे न दिखा दूँ ! तुम्हें दान-पुण्य का जितना शौक है, वह सब निकाल लो । जितना चाहे दान पुण्य करो !*

(फिर टागे तिपाई पर रख लेते है ।)

माँ : (अविश्वास और व्यंग्य से) *मैंने बहुतेरा दान-पुण्य कर लिया ।*

बसन्तलाल : (नशे में झूमते हुए) *मै कहता हूँ, मैं एक लाख रुपये केवल तुम्हारे नाम लगवाने जा रहा हूँ !*

माँ : (विमूढा सी) *लाख !*

बसन्तलाल : (अपनी रौ में) एक लाख रुपया इन साले लडकों को दे दूँगा।

माँ : लाख !

बसन्तलाल : (अपनी रौ में) और एक लाख में से चाननराम, गोबिन्द राम, बनारसीदास . .।

माँ : लाख—लाख—लाख आप शायद . ..

बसन्तलाल : (जोश से उठकर) तुम्हें विश्वास नहीं होता (जेब से तार निकालते है।) तीन लाख की लाटरी मेरे नाम निकली है।

माँ : (भौचक्की सी) तीन लाख की !

(उठ कर खडी हो जाती है।)

— : आप शायद अधिक

बसन्तलाल : (कागज को हवा में फहराते हुए) यह देखो तार। मैंने दीनदयाल से दस हज़ार रुपया लिया है। जब तक लाटरी का रुपया वसूल नहीं होता, तब तक के लिए। पाँच हज़ार मै चाननराम को दे दूँगा, उसकी लड़की का विवाह है। मै उसका आभार नही भूल सकता (सहसा आखें भर कर) इन साले लडकों ने जब मेरा साथ छोड़ा तब उसने मेरी कितनी सेवा की (आँखे पोंछ कर) पर पूत कपूत होते हैं पिता कुपिता नहीं होते, मैं इन सालों के नाम एक लाख लगा दूँगा, लाख तुम ले लो और शेष लाख से मै जो चाहे करूँ। मैंने तुम्हें कहा था न कि लाटरी इस बार मेरे नाम अवश्य आयेगी।

माँ : (मन ही मन से भगवान सत्यनारायण को प्रणाम कर के) मैंने भगवान सत्यनारायण की कथा करायी थी।

(चर्खे के ऊपर से गुजर कर उनके पास आ जाती है।)

बसन्तलाल : तुम अब सब नारायणों की कथा कराना।

[चलते हैं, फिर रुक कर पगडी उठाते हैं, उसी तरह बगल में दे लेते हैं, और मूछों पर ताव देते हुए दरवाजे की ओर बढ़ते हैं।]

माँ : (साथ साथ जाती हुई) किधर चल दिये, कुछ पल तो बैठिए, आप ..

बसन्तलाल : मुझे चाननराम से मिलना है, उसकी लडकी का विवाह है...

माँ : (आर्द्र-कंठ से) दयालचन्द का भी आप को ख्याल आया।

बसन्तलाल : दस हज़ार रुपया उसके ढूँढने पर खर्च कर दूँगा। वह मेरा लडका इन सब से अच्छा था—आज्ञाकारी और होनहार !

माँ : सब उसकी बुद्धि की प्रशंसा करते थे।

बसन्तलाल : वह पाताल में चला जाय तो भी मै उसे ढूँढ लाऊँगा।

माँ : लेकिन आप इस को तो आ लेने दें।

बसन्तलाल : उस साले को मैं माल पर दुकान खुलवा दूँगा।

माँ : आप की कैंची की डिबिया ....

बसन्तलाल : नौकर को शौक है, उससे कहना पी ले......

(चले जाते हैं।)

[मा मुडती है, प्रसन्नता से चेहरा दुगना हो गया है। इधर उधर देखती है कि कहीं भगवान की मूर्ति हो तो सिर झुकाये। पर वह तो बरामदा है वहा भगवान की मूर्ति कहा, चित्र भी नहीं। आखिर आकाश की ओर देख कर नतमस्तक हो जाती है, भगवान आकाश में जो बसते हैं न, इसी लिए।]

— : भगवान तेरी लीला अपरम्पार है। तूने जिस प्रकार मेरी सुनी इस प्रकार सब की सुन। मै सब से पहले तेरा प्रसाद बाटूँगी।

(नौकर कैंची की डिबिया लिये प्रवेश करता है।)

नौकर : माँ जी कैंची......

माँ : डिबिया तू ही रख ले और जा पाँच रुपये के लड्डू चौक से ले आ। ताजे बनवा कर लाना। मैं पाठ पर बैठी

होऊँ तो मुझे न बुलाना ! भगवान को प्रसाद लगाना चाहती हूँ मै !

[नौकर उलटे पाव वापस चला जाता है और मां बार्यां ओर के, सामने कमरे में प्रवेश करती है।

कुछ क्षण बाद डा० हसराज घबराये हुए प्रवेश करते है और अपनी पत्नी को आवाज देते हैं]

डा० हसराज : कमला, कमला

[कोई आवाज नहीं आती

डाक्टर साहब "कमला कमला" आवाजें देते हुए सब कमरों में झांकते है और फिर शायद पाठ करती हुई मां से सकेत पाकर स्नानगृह के दरवाजे पर आ खड़े होते हैं और किवाड पर टिकटिक करते हुए आवाज देते है ।]

— : कमला कमला !

[किवाड खोल कर कमला अन्दर से निकलती है। खुले खुले चमकीले बाल उसके कधों पर बिखरे हैं। चेहरा निखरा हुआ है और श्वेत साडी उसने पहन रखी है। कधों पर बालों के नीचे एक तौलिया है।

पीढ़ी पर रखा हुआ किरोशिया और आधा बुना मेज-पोश उठा लेती है और किरोशिया चलाने लगती है।]

डा० हंसराज : तुम्हें हो क्या गया। इतनी आवाज़ें मैने दी......

कमला : मैने नल छोड़ रखा था। केश.. ...

डा० हसराज : तुम्हें पता नहीं पिता जी के नाम तीन लाख की लाटरी निकल आयी है।

(कमला अवाक् खडी रह जाती है।)

डा० हंसराज : सच, तीन लाख की। तुम्हे याद है न, एक बार तुमने आटा लेने के लिए दस रुपये उन्हें दिये थे। उस दिन, जब चचा चाननराम यहाँ आये हुए थे। उस दिन जी, जब कैलाश-पति भी यहाँ था और वे आटा लाने के बदले लाटरी का टिकट ख़रीद लाये थे।

कमला : (बुनना छोड़ कर) वे रुपये तो हमारे थे। लाटरी का रुपया तो हमें मिलना चाहिए।

डा० हंसराज : (विवशता से) लेकिन डर्बी-स्वीप वाले तो इस बात को नहीं जानते।

कमला : वे लाख न जानें। किन्तु पिता जी को तो उसका आधा हमें देना चाहिए। यदि मै रुपये न देती तो वे टिकट कहाँ से खरीदते।

डा० हंसराज . तुम तो मूर्ख हो।

[सिर कुरेदते हुए घूमते है। कमला शायद 'मूर्ख' की उपाधि पाकर ही सतुष्ट हो गयी है। इसलिए वह दीवार के साथ ही लगी खडी चुपचाप मेजपोश बुनती रहती है।]

डा० हंसराज : (सारे बरामदे का एक चक्कर लगाकर, 'तुम क्यों दुबले नगर के अदेशे' के से स्वर में) मैं कहता हूँ, यह चाननराम पिता जी का सब रुपया हड़प करके दम लेगा। मुझे निहालदास ने बताया—आते आते कहीं उसकी दुकान पर गप हाँक आये होंगे—पाँच हजार पिता जी उसे दे रहे है। निहालदास कहता था कि वे अभी घर गये है, आये थे पिता जी यहाँ ?

कमला : शायद आये हों, मुझे कुछ आभास तो होता है, परन्तु मै तो स्नान-गृह में थी, और नल मैंने छोड़ रखा था और माँ चर्खा कात रही थीं, कदाचित इस सब के शोर में मुझे सुनायी नहीं दिया। मा से पूछा आपने ?

डा० हंसराज : वे पाठ पर बैठी हैं।

[ड० हंसराज चुपचाप, कमर के पीछे हाथ रखे, बरामदे का एक और चक्कर लगाते हैं फिर रुककर :—]

— . तुम मानी नहीं तब, नहीं यदि उन्हें यहाँ से न जाने दिया जाता तो कितना अच्छा होता।

कमला : (तिनक कर) मै नही मानी, मैंने तो कई बार कहा कि

आखिर आप के पिता है, उन्होंने पढ़ाया लिखाया तो आप इतना कमाने के योग्य हुए—किन्तु आपने सदैव मुझे डाँट बता दी। आप स्वयं नही चाहते थे।

डा० हंसराज : मै न चाहता था। जब वह शराब पिये आते थे तो उनकी गालिया किसे अखरती थीं?

कमला : और जब वे कीचड़ से सने हुए जूते लिये, खुले गले, नंगे सिर, झूमते झामते दुकान में आ जाते थे तो कौन तिलमिलाता था?

डा० हंसराज : पर तुम्ही को तो उनका कई कई मेहमानों को लेकर आ जाना और उन सब के लिए खाना पकाने का ताना-शाही आदेश देना अखरता था।

कमला : और आपको ही तो उनका रोगियों के सामने आधा नाम लेकर पुकारना बुरा लगता था।

डा० हंसराज : तुम मेरे साथ अन्याय करती हो।

कमला : आप मेरे साथ अन्याय करते हैं। यही दस रुपये—याद है न आपको—मैंने आटा लाने के लिए दिये थे और आपने दस बातें बनायी थीं।

[मटकती हुई दायें कमरे में जाती है। बगूले की भाँति गुरु प्रवेश करता है।]

गुरु : भाई साहब, सुना आपने, पिता जी के नाम तीन लाख की लाटरी निकली है (मुँह बाये और आँखें फाड़े) तीन लाख की डर्बी की लाटरी! राज का बडा भाई उनसे मिलने के लिये चचा चाननराम के घर गया था।

डा० हंसराज : इंटरव्यू करने के लिए?

गुरु : जी! दो बार तो वे बात ही नही कर सके, गुट पड़े थे, तीसरी बार वह गया तो अपनी अलसायी, मदमाती, रक्तवर्ण, आँखें खोल कर उन्होंने उसे अपने पास बुलाया और उसके मुँह पर एक जोर से चपत लगा दी और फिर

जेब से एक सो का नोट निकाल कर उसके सामने फेंक दिया कि जा कम्बख्त दो चार दिन मज़े कर, क्या ज़रा ज़रा सी खबरों के लिए मारा मारा फिरता है।

डा० हंसराज : (चौंक कर) सौ रुपया दे दिया (जिस कमरे में कमला गयी है, उधर को देख कर) मैं कहता हूँ, यह तीन लाख रुपया इसी तरह उड़ जायगा (फिर गुरु की ओर मुड़ कर) गुरु तुम जाओ, तनिक हरिनाथ को बुला लाओ।

[गुरु चलना चाहता है। डा० हंसराज उसे फिर आवाज़ देते हैं।]

—: और देखो, बिन्द्रा के यहाँ से, देव को टैलीफ़ोन कर देना और यह लो एक रुपया, कैलाशपति को तार दे दो कि जिस प्रकार भी हो सके, वह आज रात यहाँ पहुँच जाय।

[रुपया निकालकर उसकी ओर फेंकते हैं, गुरु उसे उठाकर चला जाता है और डाक्टर साहब फिर सिर कुरेदते हुए घूमने लगते हैं और फिर आप ही आप बड़बड़ाते हैं :]

—: किसी न किसी प्रकार उन्हें यहाँ ले आना चाहिए।

(फिर घूमते हैं, फिर रुककर •)

—: पर ले कैसे आएँ ?

[कमला, पूर्व-वत् किरोशिये से मेज़पोश बुनती हुई, एक कमरे से निकल कर दूसरे कमरे को जाती है, बुना हुआ मेज़पोश लटकता हुआ जा रहा है—डाक्टर साहब उसके पास जाते हैं।]

—: कमला।

कमला : (रुककर और मुड़ कर) कहिए।

डा० हंसराज : (और भी पास जाकर तनिक भेद भरे तथा अनुनय के स्वर में) देखो जो हुआ सो हुआ, पर बुद्धिमान वही है, जो बिगड़ी हुई बात बना ले।

कमला : (नीची निगाह किये किरोशिया चलाती हुई) इसमें क्या सन्हदे है, बिगड़ी हुई बात बनानी ही चाहिए ।

(चलती है ।)

डा० हसराज : (साथ साथ चलते हुए) मै चाहता हूँ कि पिता जी को यहाँ ले आऊँ ।

कमला : तो ले आइए ।

डा० हसराज : लेकिन ले आने से काम न चलेगा, उन्हें यहाँ रखना होगा ।

कमला : तो रखिए !

डा० हसराज : रखने की बात नहीं, उनका मन बहलाना होगा !

कमला : तो बहलाइए !

(गुरु के कमरे में दाखिल हो जाती है ।)

डा० हंसराज : (बाहर खड़े खड़े) कमला !

[कमला मुडकर चौखट में खडी हो जाती है—चट्टान की भाँति !—दोनों एक निमिष के लिए एक दूसरे की की ओर देखते हैं ।]

डा० हंसराज : (स्वर को तनिक विवश, तनिक विनम्र बनाकर) देखो मेरी बात का गुस्सा न किया करो ! मेरा दिमाग बड़ा परेशान रहता है । खर्च दिन दिन बढ़ता जा रहा है और आय उतनी है नहीं और सरकार के बढ़ते हुए करों के कारण दुकान और मकान के स्वामी किराया बढ़ाने की सोच रहे हैं और फिर यह कम्बख्त लाहौर—नित्य कोई न कोई अतिथि आया रहता है और पोजीशन रखने के लिए महँगे भाव चीज़ें खरीदनी पड़ती हैं ।

[कुछ क्षण के लिए, यह देखने के हेतु कि उनकी इस विवशता का प्रभाव उनकी पत्नी पर पड रहा है या नहीं, उसके चेहरे की ओर देखते हैं फिर :]

— : कैसी विडम्बना है यह कि जिनको आवश्यकता है, उन्हें

लोहू पानी एक करने पर भी पैसा नहीं मिलता और जिन्हें ज़रूरत नहीं, उनके पास आप से आप चला आता है।

(फिर पत्नी के मुख की ओर देखते है ।)

— : उनको व्यर्थ उड़ाने के लिए तीन लाख मिल जायँ और हमें उचित खर्च के लिए तीन सौ भी न मिलें !

[विवशता लाचारी और निराशा से सिर झुका लेते है । चट्टान पिघलकर अपना स्थान छोड़ देती है ।]

कमला : (बाहर आकर) आप यों ही जी छोटा करते हैं। दूसरे के नर्म-गर्म बिस्तरों को देखकर कोई अपनी दरी दुलाई तो नहीं उठा देता।

डा० हंसराज : (लगभग गर्ज कर) दूसरों के—मैं अपने पिता की बात कर रहा हूँ। उनके धन पर क्या हमारा कोई अधिकार नहीं? उनके सुख दुख में क्या हमारा कोई भाग नहीं? और फिर मैं कहता हूँ कि अपने हक और अपने हिस्से की बात छोड़ो, मैं तो उनके लाभ की बात सोच रहा हूँ। यदि इस समय उन्हें न बचाया गया तो वे तबाह हो जायेंगे। परमात्मा ने यदि उन्हें एक अवसर दिया तो उन्हें उसका पूरा लाभ उठाना चाहिए। उसका दुरुपयोग उन्हें न करना चाहिए। और वे जिस रफ़्तार से रुपया उड़ा रहे हैं उस तरह तो तीन लाख, तीन वर्ष तो क्या, तीन महीने नहीं रहेगा। तुमने सुना नहीं, उस राज के भाई को उन्होंने एक सौ रुपया केवल एक चपत खाने के बदले दे दिया।

(देव चुपचाप प्रवेश करता है।)

देव : केवल एक चपत, परमात्मा की सौगन्ध, सौ रुपये के लिए तो आदमी सौ जूते खा सकता है।

डा०हंसराज : और भला नहीं क्या ?

(कमला हँसती है।)

देव : (उसी सर्दियों के सूर्य की सी मुस्कान के साथ) हँसी की बात

नही भाभी, तुम नही जानती, डिलिवरी ब्रॉच* में कितना काम होता है। नये विधान के अनुसार दफ़्तर तो दूर, दुकानो के नौकरो तक को इतवार की छुट्टी होती है, किन्तु मुझे कई रविवारों को प्रातः पाँच बजे से साँझ सात बजे तक ड्यूटी देनी होती है। साल के बारह महीने, महीने के तीस इकतीस दिन और एक दिन के आठ घंटे—कहने का मतलब यह कि वर्ष भर में लगभग दो हज़ार नौ सौ बीस घंटे अनथक काम करने के बाद मिलता क्या है? चालीस रुपया मासिक के हिसाब से मात्र ४२० रुपया—फिर यदि १०० जूते खाने के बदले सौ रुपया मिल जाये तो क्या बुरा है।

डा० हंसराज : लेकिन मैं पूछता हूँ—हरिनाथ क्यों नहीं आया। उसे तो तुम से पहले आ जाना चाहिए था। मैंने गुरु से कहा था कि वह उसे भेजकर तुम्हें टैलीफोन करे। और तुम ही इतनी जल्दी कैसे आ गये, क्या लारी पर आये थे?

देव : आया तो मै लारी पर ही हूँ, किन्तु टैलीफोन मुझे नही मिला।

डा० हंसराज : तो तुम्हें लाटरी का कैसे पता चला।

देव : शायद पिता जी उसमे से चचा चाननराम को पाँच हज़ार रुपया देने वाले है। ईर्षा-वश उनके भाई ने मुझे टैलीफ़ोन किया कि यदि तुम लोगों ने कुछ न किया तो सब समाप्त हो जायगा।

डा० हंसराज : इसमे क्या सदेह है, एक बोतल पिला कर कोई पिता जी से तीन लोक का साम्राज्य लिखवा सकता है और फिर चची......

देव : एक ही विष की गाँठ है। ऊपर से जितनी भोली है, अन्दर से उतनी ही खोटी! आकृति उनकी जितनी सुन्दर है,

---

* डाकखाने का एक विभाग जिसमें बाहर से आये हुए पत्र बाँटने के लिये डाकियो को दिये जाते हैं।

हृदय उनका उतना ही कुरूप है। मीठी मीठी बातों से मोह लेना वे खूब जानती है और फिर पिता जी, उनकी दुर्बलता तुम जानते ही हो, मीठी बातें करके, उन्हें चाहे कोई लूट ले, उनके कपडे तक उतार ले।

डा०हंसराज : छै महीने घर रखने के बदले पाँच हज़ार रुपया हथिया लिया, और लूटना किसे कहते है ?

[दोनों कमरे में घूमने लगते है। एक कुर्सी से रसोई-घर तक और दूसरा कुर्सी से कमरे तक। फिर दोनों आमने सामने आकर खड़े हो जाते है।]

डा०हंसराज : (उसी कटुता से) देखो न, तुम उस डाकखाने के अँधेरे कमरे में, दिन के समय भी बिजली की रोशनी में चिट्ठियों के साथ माथा फोड़ते हो। यदि जीवन में तुम्हें कुछ स्टार्ट मिल जाये तो तुम क्या कुछ न कर लो। अपने ही विभाग में तुम ऊँचे से ऊँचे पद पर आसीन हो सकते हो। यदि पिता जी तुम्हें दस हजार.........

देव : उन्हें पहले अपने नये पुत्रों को तो स्टार्ट दे लेने दें। बनारसीदास को वे अपना सातवाँ पुत्र कहते है और अब तो चचा चाननराम भी पुत्र बन जाएँगे और दीनदयाल भी और जाने कौन कौन पुत्र बन जाय...और मै तो मात्र चौथा हूँ.. ...

[हरिनाथ प्रवेश करता है—बाल बिखरे, दाढ़ी बढ़ी, धोती और कमीज़ कदरे मैली]

डा०हंसराज : (उसी कटुता से) अब हरिनाथ ही को ले लो। जीवन यापन के लिए पत्रिका और प्रेस का रोग लगा बैठा है और सूरत तो देखो क्या बनायी है ? क्या कम्पाज़िटरों के साथ माथापच्ची करना इसके बस की बात है ? प्रूफ पढना और अनुवाद करना क्या इसका काम है। यह ठहरा कवि-हृदय, इसे चाहिए था कि यह भ्रमण करता, श्रीनगर, पहलगाँव, मसूरी, नैनीताल जैसे नगरों की सैर करता।

समुद्र-तट देखता और फिर शान्ति निकेतन ऐसे स्थान में जम जाता और अमर काव्यों की रचना करता।

हरिनाथ : (म्लान हँसी से) अरे भाई, ऐसे भाग्य कहाँ ?

डा०हंसराज : इस मे भाग्य की कौन सी बात है ? तुम्हे शायद मालूम नहीं, पिता जी को तीन लाख की लाटरी आयी है।

हरिनाथ : (आँखें फट जाती है और मुँह खुल जाता है) तीन लाख की ?

डा०हंसराज : तीन लाख की। यही तो मैं कहता हूँ (लगभग भाषण देते हुए) यदि आज वह तीन लाख रुपया वृथा जाने के बदले किसी अर्थ लग जाये तो क्या नहीं हो सकता ? वह कैलाशपति क्या टिकेट-कलक्टर बनने योग्य है, उसे तो पुलिस इंस्पेक्टर होना चाहिए था। कुछ रुपये खर्च करके उसे अब भी सीधा सब इसपेक्टर भरती करवाया जा सकता है। गुरु को विलायत भेजा जा सकता है और यदि वह विलायत चला जाये तो अपनी प्रखर-बुद्धि के साथ क्या कुछ नहीं कर सकता, कौन उसे आई० सी० एस० बनने से रोक सकता है !

देव : विलायत भेजने से लाभ ! वहाँ तो दिन रात बमबारी होती रहती है।

डा०हंसराज : (खीज कर) विलायत न सही, हिन्दुस्तान में तो बमबारी नहीं होती।

देव : पर सरकार ये पद प्रतियोगिताओं से न भरेगी, स्वयं नामजदगियाँ करेगी।

डा०हंसराज : तो और भी सुगम है। नामजदगियाँ पैसे वालो की होती हैं। मैं कहता हूँ, यदि घर में एक भी आई० सी० एस० हो जाये तो सारे का सारा वंश तर जाता है।

हरिनाथ : (जो काश्मीर तथा नैनीताल की सैर कर रहा है।) इसमें क्या संदेह है ?

डा०हंसराज : और मै क्या माल पर दुकान नहीं ले जा सकता। ये

डाक्टर माथुर, कपूर, भल्ला क्या मुझ से योग्य है— पैसा चाहिये पैसा, माल पर उन जैसा सैनीटोरियम क्या मै नही खोल सकता !

कमला : (जो इस समय तक चुपचाप मेजपोश बुन रही थी) मै कहती हूँ, मैं चली जाऊँगी, उन्हें यहाँ ले भी आऊँगी। शेष आपका काम है कि उन्हें फिर न भटकने दें।

डा० हंसराज : (उल्लास से) दिस इज़ लाइक ए गुड गर्ल।※

हरिनाथ : तुम्हारे बिना यह काम किसी से न होगा, भाभी।

[माँ पाठ करने के बाद माला हाथ में लिये हुए ही बाहर निकलती है।]

माँ : हरचरण आया नहीं अभी।

(हरचरण लड्डुओं की टोकरी लिये प्रवेश करता है।)

हरचरण : मैं आ गया माँ जी।

गुरु : यह लड्डू कैसे हैं ?

माँ : भगवान का प्रसाद बाँटूँगी।

हंसराज : तो लाओ इसी बात पर मुँह तो मीठा किया जाय।

माँ : (दरवाजे की ओर जाती हुई) न, न, पहले भगवान को भोग तो लगा लिया जाय। (नौकर से) आ रे हरचरण मेरे साथ मन्दिर तक, भगवान......

हरिनाथ : (कवि) हमसे बड़ा भगवान कहाँ है।

(सब हँसते हैं।)

(पर्दा गिरता है)

※This is like a good girl. यह बात है अच्छी बीबी की

(पर्दा कुछ क्षण बाद फिर उठता है।)

[दृश्य वही है। वही बरामदा और उसमें का वही सामान। चारपाई वैसे ही बिछी है और उस पर चादर ताने वैसे ही कोई सोया हुआ है। खुर्राटे वह नहीं ले रहा और नींद में बेहोश पड़ा दिखायी देता है।

कुर्सियों में भी कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। वैसे ही तिपाई के दोनों ओर पड़ी हैं। हाँ दो और कुर्सियाँ सामने की ओर को रख दी गयी हैं, रसोई-घर से ज़रा-ज़रा सा धुआँ भी निकल रहा है, यद्यपि उसमें से अब सुगंधि नहीं आती, क्योंकि अन्दर चूल्हे में अनवरत सुलगने वाले उपलों के धुएँ ने, पंडित बसन्तलाल के निरन्तर गुड़गुड़ाने वाले हुक्के के धुएँ से मिल कर, उसे परास्त कर दिया है।

पर्दा उठने पर, हम दायीं ओर की कुर्सी पर पंडित बसन्तलाल को नशे में मद-मस्त हाथ में खाली हुक्के की नै लिये, टाँग पर टाँग धरे, बैठे देखते हैं। चिलम शायद भरे जाने के लिए चली गयी है। उनके सामने की कुर्सी पर डा० हंसराज बैठे है और आकृति उनकी उस कुत्ते की सी बनी हुई है, जो स्वामी को खाना खाते देख

कर, दुम हिलाता, विनम्र, खुशामदी, लालसा भरी दृष्टि से ताकता हुआ, घुटने टेक कर बैठ जाता है कि तनिक स्वामी का ध्यान हो तो दुम हिलाये। उसमें और इनमें अन्तर मात्र इतना ही है कि इनके दुम नहीं, जिसे ये हिला सकें।

दो बार खाली हुक्के को गुड़गुड़ा कर पंडित बसन्तलाल चीखते हैं :—]

बसन्तलाल—: *मर गया वहीं चिलम के साथ।*

[स्वर की तीव्रता के बावजूद उसमें वह थथलाहट है, जो नशे के आधिक्य की सूचक है।*

रसोईघर से कैलाश की आवाज़ आती है :—]

कैलाश—: *आया पिता जी?*

[और कुछ क्षण बाद कैलाशपति रसोईघर से चिलम हाथ में लिये, उसमें फूकें मारता हुआ आता है।

आश्चर्य, कि उसकी हिंस्र-दृष्टि का कहीं ढूढे से भी पता नहीं चलता और बर्बर सा न दिखायी देकर वह निरीह सा दिखायी देता है, सिर पर उसके लम्बे लम्बे बाल नहीं और भवों पर वह तनाव नहीं। सिर पर मशीन फिरी है और लगता है जैसे भवों पर भी मशीन फिर गयी है, क्योंकि मस्तक पर एक भी तो सिलवट नहीं। चुपचाप बड़े विनम्र भाव से चिलम लाकर हुक्के पर रख देता है।

प० बसन्तलाल एक कश लगाते हैं और गुर्राते हैं—]

—: *ईडियट!* *तुझे चिलम भरने की भी तमीज नहीं, बी० ए० पास हो गया है।*

[कैलाश आँखें उठाता है, जो शायद फ़रियाद कर

---

* इस सारे दृश्य में उनकी यह थथलाहट जारी रहती है, और यद्यपि ज्यों ज्यों वे अधिक पीते हैं, अधिक मुखर होते जाते हैं, किन्तु थथलाहट भी उनकी बढती जाती है।

* *Idiot* (मूर्ख!)

रटी है कि पिता जी, मै बी० ए० में चिलम भरना नहीं सीखता रहा। तभी डाक्टर साहब उचक कर उठते हैं और अपने पिता के हाथ से चिलम ले लेते है ।]

डा० हंसराज : *सोलह आने मूर्ख हो। भला कहीं इस तरह चिलम भरी जाती है। देखो उपले की आग को इस तरह नही रखा जाता। उसके छोटे छोटे टुकडे करके रखे जाते हैं। तुमने तमाकू भी ठीक ढग से नहीं भरा होगा* (पिता से) *मै जाता हूँ, अभी और चिलम भर के लाता हूँ।*

[चिलम लेकर रसोईघर में चले जाते हैं। कैलाशपति कुर्सी पर बैठने लगता है।]

बसन्तलाल : *तुम जरा मेरी टाँगे दबाओ।*

[टाँगे तिपाई पर रख लेते है और पीछे को लेट जाते हैं। कैलाशपति मौन रूप से पिता की टागें दबाने लगता है।

देव प्रवेश करता है—सिर बिल्कुल घुटा हुआ है और चोटी खडी है, कैलाशपति उसकी ओर देखता है और हँसी को बरबस रोकता है।]

बसन्तलाल : *वाह! देखो, अब कितने अच्छे लगते हो! सदैव सिर घुटा कर रखा करो! दिमाग़ ताज़ा रहता है, बुद्धि प्रखर होती है और फिर नहाने धोने में आराम रहता है* (तनिक जोश से) *और फिर यह पुरुषत्व की निशानी है। पुरुषों को पुरुष दिखायी देना चाहिए—खुल कर हँसना चाहिए, कड़क कर बोलना चाहिए और शेरों की भाँति गर्जना चाहिए!* (हँसते हैं) *अन्य देशों में तो स्त्रियाँ पुरुष बनती जा रही हैं और यहाँ पुरुष स्त्रियाँ बनने में गर्व अनुभव कर रहे है। जानते हो चोटी का क्या महत्व है?*

[दोनों मौन रहते हैं, केवल उनकी प्रश्नसूचक-दृष्टि अपने पिता के चेहरे पर जम जाती है ।]

बसन्तलाल : चोटी हिन्दुत्व की निशानी है, हिन्दुओं का अपना जातीय चिन्ह है (खाली हुक्के को गुडगुडाते है ।) फिर मनुस्मृति में यह लिखा है कि चोटी बिजली के वेग को रोकती है। यदि कहीं मनुष्य पर बिजली गिरे, तो चोटी के मार्ग से शरीर में होती हुई धरती में प्रवेश कर जाती है।

देव : शायद यही कारण है कि प्राचीन समय मे ब्रह्मचारी नंगे सिर रहते थे और चोटी को गाँठ देकर रखते थे कि वह खड़ी रहे।

कैलाशपति : बिलकुल बिजली के कंडक्टरो की भाँति, जो ऊँची ऊँची इमारतों पर लगा दिये जाते है—जी वही लोहे के छोटे छोटे तीर अथवा त्रिशूल से— ताकि यदि बिजली गिरे तो इमारत सुरक्षित रहे।

देव : (जिसे अपनी सूझ तथा स्मृति पर कम गर्व नहीं) और फिर दादा जी कहा करते थे कि प्राचीन काल के ऋषि मुनि इसी चोटी से रेडियो का काम लेते थे और बैठे बिठाये समस्त संसार की खबरें सुन लेते थे। संजय ने हस्तिनापुर में बैठे बैठे महाराज धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र के युद्ध की खबर सुनायी, वह इस चोटी के कारण ही तो थी।

[अपनी इस सूझ तथा स्मृति की प्रशंसा पाने के विचार से अपने पिता की ओर देखता है, जो केवल मौन रूप से एक दो बार हुक्का गुडगुडा कर दाद देते हैं। डा० हंसराज चिलम लिये रसोई से निकलते हैं।]

डा० हंसराज : (कैलाशपति की ओर देख कर) देखो अब चिलम भर कर लाया हूँ—पहले तमाखू को भली-भाँति मल कर उसकी टिकिया बनायी, फिर उसे ककड पर रख कर, उस पर गुड़ के चूरे की हल्की सी तह जमायी, उस पर फिर तमाखू बखेरा, अंगूठे से उसे धीरे धीरे जमाया; नीचे के कंकड़ को तनिक हिला दिया, ताकि जम न जाय फिर उस पर उपलों की आग रखी—घंटे भर से पहले चिलम बुझ जाय तो नाम नहीं।

[प्रशसा की याचक निगाहों से अपने पिता की ओर देखते हुए चिलम हुक्के पर रख देते है।

प० बसन्तलाल हुक्का गुडगुडाते है, डा० हसराज उनके सामने की कुर्सी पर बैठ जाते हैं, और यद्यपि कैलाशपति तिपाई पर टिकी हुई उनकी टॉगे दबा रहा है, वे पॉव दबाने लगते है।

कुछ क्षण तक हुक्के की गुडगुड का शब्द बरामदे की निस्तब्धता को भग करता रहता है और धुएँ के कश छत की ओर जाते हुए, रसोई-घर से उठने वाले धुएँ से मिलते हुए, आकाश की ओर जाते है।

डा० हसराज चुपचाप से खड़े देव को सकेत करते हैं कि वह पीने का सामान लाये और स्वय अपने पिता के पॉव तनिक और निष्ठा तथा श्रद्धा से दबाते हुए मतलब की बात आरम्भ करते है ।]

डा० हंसराज: *पं० रघुनाथ कल फिर आया था।*

बसन्तलाल: (निपुणता से भरी हुई चिलम के नशे से ऊँघती हुई आवाज में) *कौन रघुनाथ ?*

डा० हसराज. *जी वही रायसाहब चम्पाराम का पुरोहित। देव तथा कैलाश के लिए पूछने आया था, दो बार आगे भी आ चुका है।*

बसन्तलाल: (तन्द्रिल पलकें उठा कर) *कौन चम्पाराम ?*

डा० हसराज: *जी वही जो द्वाबा ही का रहने वाला है—वही जी, जिसके पास आप एक बार देव की सिफ़ारिश लेकर गये थे, और जिसने सीधे मुँह बात भी न की थी।*

बसन्तलाल: (सहसा उठ कर) *वह चम्पाराम कम्बख्त......उसको बिलकुल 'न' कर दो !*

(देव मदिरा की बोतल और शीशे का गिलास लाता है।)

डा० हंसराज: (गिलास में मदिरा डालकर उनकी ओर बढ़ा कर, बोतल फिर देव को देते हुए) *यह 'न' करने का समय नहीं पिता जी।*

इस समय तो बल्कि 'हाँ' करनी चाहिए। हमारे उस अपमान का, इससे बढ़कर और क्या बदला होगा कि वह अपनी लड़कियों की डोलियाँ हमें दे।

[पंडित जी गिलास कंठ में उँडेल कर फिर दे देते हैं, डाक्टर साहब बोतल लेकर उसमें से तनिक और उँडेल देते है।]

डा० हंसराज : (बात को जारी रखते हुए) *और फिर चम्पाराम प्रभाव और समर्थ वाला आदमी है, कैलाशपति को वह सीधा ही सबइंस्पेक्टर भरती करा सकता है, देव का उज्ज्वल भविष्य और उन्नति भी इस रिश्ते से सुनिश्चित हो सकती है और फिर इस आदमी से सम्बन्ध करके और बीसों काम निकल सकते हैं—गुरु को प्रतियोगिता में बैठना है, और उसमें भी सिफारिश कम काम नहीं करती।*

बसन्तलाल : *तो हाँ कर दो!*

[फिर टाँगें तिपाई पर रख लेते है और पीछे को लेट जाते हैं।]

डा० हंसराज : (उनके पाँवों को दबाते हुए) *किन्तु 'हाँ' किस प्रकार कर दें। इतने बड़े आदमी की लड़कियाँ घर में योंही तो नहीं लायी जा सकतीं। उनके लिए सौ सौ सामान चाहिएँ। मैंने आप से कहा था कि आप बीस बीस हजार रुपया देव तथा कैलाश के नाम लगा दें। फिर जब तक हम अपनी कोठी निर्मित नहीं कर लेते, बाहर एक कोठी लेकर रहें। फिर तो मै 'हाँ' करूँ भी। नहीं तो योंही 'हाँ' करके अपना अपमान कैसे कराऊँ!* (गिलास उठा कर उनको देते हुए) *और फिर अभी तो पण्डित ही देख कर पूछ गया है, जब स्वयं चम्पाराम आया और उसे ज्ञात हुआ कि लड़कों के पल्ले तो पैसा भी नहीं तो......*

बसन्तलाल : (सहसा उठकर और टाँगे नीचे करके) देव......

देव : *जी!*

बसन्तलाल : *जाओ मेरी चैक बुक उठा लाओ।*

(देव बोतल तथा गिलास कैलाशपति को देकर भाग जाता है।)

— : *चम्पाराम को भी पता चले कि बसन्तलाल कोई ऐसा वैसा आदमी नहीं है।*

डा० हंसराज : (रद्दा जमाते हुए) *चाटुकारी से प्राप्त किये हुए धन का उसे गर्व है। भाइयों का गला काट कर वह आज धनाढ्य ..*

बसन्तलाल : *तो हटाओ, उस साले की लड़कियो से हम अपने पुत्रों का विवाह न करेंगे।*

(फिर पीछे को लेट जाते है और हुक्का गुड़गुड़ाते है।)

डा० हंसराज : (चौंक कर पुनः पाँवों को दबाते हुए) *विष के मारने को विष ही महाबली है, पिता जी! धनी का दर्प धन ही से चूर हो सकता है।*

[देव चैक बुक ले आता है। डा० हंसराज हाथ बढा देते हैं।]

— : *लाओ, इधर लाओ!*

[देव चैक बुक डाक्टर साहब को देकर फिर बोतल तथा गिलास थाम लेता है और कैलाश फिर अपने कर्तव्य में रत हो जाता है*]

डा० हसराज : (फाउँटेनपैन निकाल कर चैक बुक खोलते हुए) *तो बीस हज़ार कैलाश के नाम लिख दूँ!*

---

*यह दृश्य जब तक रहता है, पुत्र अपना कर्तव्य भली-भाँति निभाते हैं। डा० हसराज बहुत देर तक अपने पिता को नशे के बिना नही रहने देते, कैलाशपति एक बार जो टाँगे दबाने लगा है, तो वही बैठा है, जब वे टाँगे तिपाई पर रख देते हैं, वह उन्हे दबाना शुरू कर देता है, देव जो एक बार बोतल तथा गिलास लाता है तो उन्हे लिये खडा रहता है। जब डा० साहब बोतल उससे लेकर गिलास में उँडेलते हैं तो वह फिर बोतल थाम लेता है, पण्डित जी जब गिलास खाली कर लेते है तो वह उसे थाम लेता है। दूसरों को भी जब कोई काम नहीं होता तो वे अपने पिता के कधे अथवा बाजू आदि दबाने लगते हैं।

(लिखते है ।)

—: और देव के नाम ? देव तो बडा है । उसे दस हज़ार अधिक मिलना चाहिए !

बसन्तलाल : (आँखें बन्द किये पूर्व-वत हुक्का गुडगुड़ाते हुए) हाँ.. हाँ उसके नाम तीस हज़ार लिख दो ।

[डा० हसराज लिखते है ।

सिर घुटाए, जाँघिए लगाये, तेल की मालिश से शरीर चमकाये कवि हरेन्द्र और भावी आई० सी० एस० गुरु प्रवेश करते है ।

पडित बसन्तलाल फिर उठकर बैठ जाते है]

— कितने डड पेल कर आये ?

गुरु : मैने जी पचास डंड पेले और पचास बैठकें निकालीं ।

बसन्तलाल : और तुमने हरि ?

हरि : मै पच्चीस से अधिक नही निकाल सका ।

बसन्तलाल : (हुक्के का कश लगाकर) बस रोज़ दो बढ़ाओ । धीरे धीरे तुम देखोगे कि तुम्हें कुछ भी कठिनाई नहीं लगती । इधर आओ !

[दोनों झिझकते हुए अपने पिता के समीप जाते हैं । पं० बसन्तलाल गुरु की गर्दन पर अपनी कलाई से एक धौल जमाते हैं—इतने ज़ोर से कि गुरु बड़ी मुश्किल से सम्हलता है]

—: हाँ अब तुम बलवान हो रहे हो । लाओ तनिक पंजा ।

[अनिच्छापूर्वक गुरु पजा देता है । पं० बसन्तलाल उससे पजा लडाते हैं ।]

—: मरोड़ो !

[गुरु ज़ोर लगाता है, पर पजा मरोड नहीं पाता । प० बसन्तलाल छोड देते हैं ।]

—: पजा लड़ाने का अभ्यास किया करो । इससे जहाँ हाथ की

अँगुलियाँ मज़बूत होती हैं, वहाँ कलाई भी मजबूत होती है। जब मै पढता था तो बडे बडो से पजा ले लेता था। और फिर कलाई किसी की पकड लेता था तो उसे छुडाना दुष्कर हो जाता था (हरि से)*इधर आओ, देखूँ तुझ में कुछ बल आया है या नहीं ?*

हरि : (गुरु की गर्दन पर धौल पडते देख कर ही जिस का रंग पीला हो गया है।) *जी अभी क्या आया होगा, अभी तो मै पच्चीस डड ही मुश्किल से निकाल सका हूँ।*

बसन्तलाल : *नहीं, इधर आओ !*

[झिझकता झिझकता हरिनाथ पिता के पास आता है, प० बसन्तलाल उसकी कलाई पकडते हैं।]

—: *छुड़ाओ, ज़ोर लगाओ !*

[बेचारा हरिनाथ भरसक ज़ोर लगाता है पर छुडा नहीं पाता। तब प० बसन्तलाल झटका देकर उसकी कलाई छोड़ देते है।]

—: *तुझ में क्या बल आयगा साले। सारा दिन कविताएँ लिखता रहता है। कविताओ से क्या होगा और फिर उनसे, जो तू लिखता है। बलवान बन, बलवान ! डंड पेल, कबड्डी खेल, दौड़ लगा, कुश्ती लड ! यदि कल तेरी पत्नी को कोई उठाने आ जाय तो अपने इस तिनके से कोमल शरीर को लेकर तू क्या करेगा, जिस में न बल है, न साहस। कविता सुना देने मात्र से तो अत्याचारी पीछे न हटेगा* (हुक्का गुडगुडा कर और खाँस कर) *'संसार में सदैव लाठी वाले की भैंस होती आयी है और लाठी उसके हाथ में होती है, जिसकी भुजाओं में बल हो और सीने में साहस !'* (फिर कश लगाते, खाँसते और खँखारते हैं।) *प्रतिदिन नियमित रूप से व्यायाम किया करो और "सौंची पक्की" खेला करो ताकि सीना मज़बूत हो।*

डा० हंसराज : *यह 'सौंची पक्की' क्या बला होती है ?*

[प० बसन्तलाल लडखडाते हुए उठते हैं और गुरु के सामने आ खड़े होते है और अपना बायाँ पाँव आगे बढाते है।]

—: *तुम भी अपना बायाँ पाँव आगे बढ़ाओ।*

(गुरु अपना पाँव आगे बढाता है।)

—: *अब अपनी दोनों हथेलियाँ मेरे सीने पर मारो।*

[गुरु झिझकता हुआ अपने दोनों हाथ अपने पिता के वक्ष पर मारता है।]

—: *अब पीछे हटो, मै मारता हूँ। अपने सीने पर मेरे हाथ लो!*

[पीछे हटकर अपने दोनों हाथ गुरु के सीने पर मारते हैं—इस जोर से कि गरीब पीछे गिरता गिरता बचता है। दीनदयाल प्रवेश करता है और गुरु, जिसका सीना केवल एक बार की 'सौंची पक्की' से दर्द करने लगा है, पीछे हट जाता है।

दीन दयाल प० बसन्तलाल ही की आयु का व्यक्ति है। बड़े अच्छे सूट में आवृत्त है, आकृति उसकी ऐसी है कि उसे देखकर उसके आन्तरिक भावों को जान लेना बडा कठिन है—यद्यपि आयु ने चेहरे पर अपनी रेखाएँ बनानी आरम्भ कर दी हैं, तो भी वह यथेष्ट भरा हुआ है। ओठों की सहज मुस्कान और स्वभाव की, अभ्यास से पैदा की हुई, विनम्रता ने उस पर एक खोल सा चढ़ा रखा है—केवल उसकी आँखों में कुछ ऐसी अमानुषिक चमक है, जो उसके इस खोल का भेद खोल देती है, पर उस चमक को पहली नजर में देख लेना साधारण व्यक्ति के बस की बात नहीं।]

दीनदयाल : *वाह खूब अखाड़ा बना रखा है। तुम भी...बसन्तलाल...* (हँसता है।) *तुम्हें सभ्यता कभी न छुएगी।*

[बसन्तलाल गुरु को उसकी निर्बलता पर कुछ कहने ही जा रहे थे कि दीनदयाल को देखकर वापस आकर कुर्सी में धँस जाते हैं। गुरु गिरता गिरता सम्हल कर 'नमस्कार' करता है। देव के हाथ खाली नहीं, इस लिए वह बोतल और गिलास समेत हाथों को मस्तक से लगाकर अभिवादन करता है। हरिनाथ अपने आप को इस वेश में देखकर घबरा जाता है और 'नमस्कार' करना भूल जाता है, केवल डाक्टर साहब सहज भाव से उठकर 'नमस्कार' करके कुर्सी पेश करते हैं।]

बसन्तलाल : (कुर्सी में धँसते हुए) *सभ्यता.....*

[देव से बोतल और गिलास लेना चाहते हैं। डा० हंसराज व्यस्त होते हुए स्वयं बोतल और गिलास ले, पैग बनाकर उन्हें देते हैं।]

—: (एक ही बार उसे कंठ में उँडेल कर, दीनदयाल का कंधा पकड़ कर झकझोरते हुए) *आजकल की सभ्यता में है क्या! उसमें साहस कहाँ है! दयानतदारी कहाँ है। सत्य कहाँ है? सहिष्णुता कहाँ है! हमदर्दी, तरस और वफ़ा कहाँ है?* (हुक्का गुड़गुड़ाते हैं।) *यह सभ्यता दिखावे की सभ्यता है; छल, कपट और फरेब की सभ्यता है—यह ब्राह्मण की सभ्यता नहीं, क्षत्रिय की सभ्यता नहीं, यह वैश्य की सभ्यता है।* (खँखारते और झूमते हैं।) *रुपये के बल पर पुत्र को पिता के विरुद्ध ख़रीद लो; भाई को भाई के विरुद्ध ख़रीद लो; नौकर को स्वामी के विरुद्ध खरीद लो, मित्र को मित्र के विरुद्ध खरीद लो; और देश सेवक को राष्ट्र के विरुद्ध ख़रीद लो* (दीनदयाल को बाज़ू से पकड़ कर झकझोरते हुए) *तुम किस सभ्यता का जिक्र करते हो, आज पैसे के बल पर मैं सारी दुनिया और उसकी सभ्यता को खरीद सकता हूँ।* (टाँगें तिपाई पर रख कर पीछे को लेट जाते हैं।) *आज जिस पागल को कोई पूछता नहीं; जिसके मस्तिष्क में सोलह आने भुस भरा हुआ है; कोई*

बड़ा आदमी तो क्या, क्लर्क तक जिस मूर्ख से बात करना पसन्द नही करता, उसके पास यदि आज कही से धन आ जाय तो कल बडे से बडा आदमी उसे अपना दामाद बना सकता है। सभ्यता ...(हँसते हैं और नशे में कुर्सी पर ही झूलते है ।) मै पूछता हूँ, इसमें हड्डी कहाँ है, स्थायित्व कहाँ है, इस लचलचाती, खोखली सभ्यता की दुहाई देकर तुम मेरा उपहास उड़ाना चाहते हो.. ...साले !

(हुक्का गुडगुडाते है ।)

दीनदयाल : (चतुर) और तुम्हें इस नंग धडंग सभ्यता का मान है। है न ?

बसन्तलाल : (दीनदयाल के जाल में फँस कर जोश के साथ) इसमें अपनापन तो है, निजत्व तो है, (फिर हुक्के का कश खींचते है ।) यह चिलम साली बुझ गयी। (चिलम को उतार कर देखते है ।) इन सालों को कभी चिलम तक न भरनी आयगी।

[कैलाशपति वहीं बैठा बैठा उस व्यग्यभरी मुस्कान से डाक्टर साहब की ओर देखता है, जो कदाचित यह कह रही है कि यदि मूर्खता का यही माप है तो इस दृष्टि से हम सभी सोलह आने मूर्ख हैं।

लेकिन डा० हंसराज उसकी ओर नहीं देखते, चिलम अपने पिता से लेकर वे हरिनाथ की ओर बढ़ा देते हैं।]

डा० हंसराज : इसे भाग कर भर लाओ हरि !

[और वह बडी सुकोमल अभिरुचि का सात्विक, परहेजगार कवि, जिसे सिगरेट और शराब के नाम ही से घबराहट होती थी, लपक कर चिलम ले लेता है और रसोई घर की ओर जल्दी से बढ़ता है।]

बसंतलाल : (खाली हुक्के को गुड्गुड़ाते हुए, दीनदयाल से) सुन्दर आवरणों में आवृत्त, मात्र दिखावे की इस सभ्यता में वह निजत्व कहाँ ? इसने तुम से तुम्हारा अपनापन छीन लिया है। तुम, तुम कहाँ हो ? भाषा तुम अपनी नहीं बोलते, चाल

तुम अपनी नही चलते, वेशभूषा तुम्हारी अपनी नही। तुम्हारा जो कुछ है दूसरो का है । दूसरों के लिए है ।

(देव के हाथ में की बोतल की ओर देखते है ।)

डा० हसराज : देव इधर लाओ !

बसंतलाल . नही रहने दो, मै होश खोदूँगा ।

दीनदयाल : तुम सा पयक्कड एक बोतल मे होश खो देगा ।

(हँसता है ।)

बसतलाल ' (मदमत्त निगाहों से उसकी ओर देखते हुए) यह दूसरी है, सुबह से पी रहा हूँ ।... . . सुन लिया . ...अब भूल कर कभी मुझे सभ्य अथवा असभ्य का ताना न देना ।

दीनदयाल : (अपने आदमी होने पर गर्व के साथ) तुम कोई आदमी हो, शिष्ठाचार तुम में नाम को नहीं ।

बसंतलाल : (तुनक कर—उसके घुटने को झकझोरते हुए) जिसे तुम शिष्ठाचार, एटीकेट (*Etiquette*) कहते हो , इसके चक्कर में पड़े कि गये, फिर रुकाव नहीं । प्रात: उठने के साथ ही यह शिष्ठाचार गला दबा लेता है—'यह करो, यह न करो;' 'यह पहनो, यह न पहनो;' 'ऐसे चलो, ऐसे न चलो;' 'ऐसे बोलो, ऐसे न बोलो;' 'ऐसे हँसो, ऐसे न हँसो;' 'ऐसे रोओ, ऐसे न रोओ' (हँसते हैं और खाली हुक्का गुड़गुड़ाते है।) यहाँ तक कि तुम अपनी स्वाभाविक बोली, पहनावा, चाल, हँसी, रुदन सब कुछ भूल जाते हो ।

(खाली हुक्का गुडगुडाते हैं ।)

— : मैंने एक युवक को देखा, जब उसने वकालत पास की तो अच्छा समझदार, मृदु-भाषी, सरल, हँसमुख युवक था—स्वाभाविक रूप से हँसता बोलता था । फिर वह आई० सी० एस० हो गया । लगे शिष्ठाचार और सभ्यता उसका गला दबाने—एक पार्टी में मैंने उसे देखा—बस उसमें शिष्ठाचार और सभ्यता ही थी और कुछ न था ।—

न वह भाषा न स्वर, न हँसी न बोली, न चाल न ढाल—उसका अस्तित्व तक कृत्रिम नज़र आता था—मुझे उस साले पर दया हो आयी।

(खाली हुक्के को गुडगुडाते और ज़ोर से चीखते हैं।)

— : *अरे हरि मर गया चिलम के साथ वहीं!* (फिर दीनदयाल से) *और फिर सभ्य-समाज के इन नियमो का अन्त कहाँ है? ज्यों ज्यों सभ्य से सभ्यतर समाज में जाओ, 'ऐसे करो' 'ऐसे न करो' की बेड़ियाँ अपने पाँवों में बढ़ाते जाओ— मेरा तो ऐसी सभ्यता में दम घुट जाय।*

(हरिनाथ चुपचाप आकर चिलम रख देता है।)

डा॰ हंसराज : *पिता जी ने फैसला किया है कि तीस हजार के खर्च से एक विशाल व्यायामशाला खोलेंगे।*

दीनदयाल : *लेकिन तुम्हारे इन डंड बैठकों और 'सौंची पक्की' से होगा क्या? लोग तोपें और तलवारें ......*

बसंतलाल : (देव से लेकर थोड़ा सा और पेय कंठ में उँडेल कर और देसराज का हाथ थाम कर उसे सुझाते हुए) *तोपें-तलवारें क्या भगोड़े चला सकेंगे? उनके लिए मानसिक और शारीरिक बल की आवश्यकता है। शरीर में बल हो, मन में साहस हो तो लाठी की जगह तलवार, बंदूक तथा तोप ले सकती है और कुश्ती की जगह युद्ध!*

दीनदयाल : *लेकिन महात्मा गांधी तो अहिंसा का प्रचार कर रहे हैं।*

बसन्तलाल : (हाथ छोड़ कर उसका कंधा पकड़ते हुए) *महात्मा गांधी की अहिंसा बलवानों की अहिंसा है, ठोस आदमियों की अहिंसा है, भगोड़ों या हीजड़ों की अहिंसा नहीं। मैं अपने बेटों के नाम बीस बीस हज़ार रुपया लगाने जा रहा हूँ और मैं चाहता हूँ कि उस रुपये को पाकर भी वे अपना निजत्व कायम रखें।*

[बोतल से काफी बड़ा पैग भर कर एक ही बार पी लेते है और कुर्सी पर पीछे को लेट जाते है, टाँगें भी उठाकर कुर्सी पर रख लेते हैं, आँखें बन्द कर लेते है और मौन रूप से हुक्का गुड़गुड़ाते है ।]

डा० हंसराज : (घूम फिर कर पुन: मतलब की बात पर आते हुए) परन्तु गुरु का भी तो बताइए, वह कम से कम एम० ए० तक पढेगा और मेरी प्रबल इच्छा है कि वह आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में बैठे !

बसन्तलाल : (वहीं लेटे लेटे) दस हज़ार उसके नाम लिख दो !

डा० हंसराज : लेकिन अभी आपने कहा था कि आप हरेक के नाम बीस हज़ार रुपया लगा देंगे ।

गुरु : और फिर इन सब की पढ़ाई पर तो इतना खर्च आया है, मेरी.........

बसन्तलाल : अच्छा साले...(डा० हंसराज से) इसके नाम बीस हज़ार लिख दो !

दीनदयाल : (सुअवसर देखकर) कहो भई हरि, तुम ने उस मशीन का फ़ैसला किया है या नहीं ।

हरिनाथ : मेरी ओर से फ़ैसला ही फ़ैसला है । शेष सब तो पिता जी पर निर्भर है ।

दीनदयाल : क्यों भई बसन्तलाल, तुम इसे बड़ी सिलंडर मशीन क्यों नहीं लगवा देते ? उस खिलौने की ठिच ठिच में यह क्या लगा रहता हैं । देखो, इसे सिलंडर मशीन लगवा दो— अच्छा मशीन मैन रखे, अच्छा टाइप मँगाये, फिर देखो, दिनों में ही इसका प्रेस और पत्र कहाँ जाता है ।

बसन्तलाल : (लगभग ऊँघते हुए) कितने को आती है ?

दीनदयाल : आजकल तो उसकी कीमत बाईस हज़ार हो गयी है । लोहे का मूल्य दिन प्रति दिन चढ रहा है, पर मैने जो कह दिया, कह दिया । अपने वचन से बँधा मै बैठा हूँ । इतने

दिन से मैने केवल इसके लिए ही रख छोडी है। हरि ने इच्छा प्रकट की थी। किन्तु यदि और दस दिन यह मशीन पडी रही तो उसका मूल्य दुगुना हो जायगा, फिर मै विवश हो जाऊँगा और तुम भी बसन्तलाल, फिर मुझे कुछ न कहना।

बसन्तलाल : (नशे की झोंक मे) बाइस हज़ार का चैक दीनदयाल के नाम काट दो।

डा० हंसराज : लेकिन इस बाइस हज़ार से क्या होगा? सिलंडर मशीन आयगी तो क्या टाइप वही घिसा हुआ रहेगा, जिसकी मात्राएँ छोड, शब्द के शब्द उड जाते है, और फिर काम बढाने के लिए हाथ मे क्या पूँजी न चाहिए?

दीनदयाल : मैं कहता हूँ बसन्तलाल, इन एक दो महीनों में तुम ने लगभग एक लाख रुपया उड़ा दिया है। उस दिन तुमने उस उठाईगीर ब्राह्मण को दो हज़ार रुपये तीर्थाटन के लिए दे दिये।

बसन्तलाल : वह बडा श्रेष्ठ व्यक्ति था।

डा० हंसराज : पिता जी सा दिल रखने वाला लाखों में—मै कहता हूँ—लाखो मे क्या, करोडों मे कोई विरला ही मिलेगा। चचा जी, आपसे क्या छिपा है—एक दिन घर में कुछ तंगी थी। माँ किसी से बीस रुपये उधार लायीं। वे सब पिता जी ने एक 'श्रेष्ठ व्यक्ति' को दे दिये। श्रेष्ठ व्यक्तियों की जो पहचान इन्हें है, वह किसे होगी?

दीनदयाल : तीन चार हज़ार टाइप के लिए चाहिए। फिर, प्रूफ निकालने वाला प्रेस भी तो ख़रीदना पडेगा, और काटने वाली मशीन भी और दस एक हज़ार रुपया हाथ मे चाहिए, नहीं तो छापाखाना सफेद हाथी बन जाता है।

डा० हंसराज : मैं पैंतीस हज़ार लिखने लगा हूँ।

बसन्तलाल : तुम सैंतीस हज़ार लिख लो।

[उठकर गिलास देव के हाथ से लेते है । सैंतीस हजार का नाम सुन कर कवि हरिनाथ का चेहरा दुगुना हो जाता है, विद्युत् की सी तेजी से इधर उधर वह देखता है कि वह क्या कर सकता है, जी उसका चाहता है कि अपने इस पिता के पाँवों से लिपट जाय, जब कुछ नहीं सूझता तो गिलास अपने पिता के हाथ से लेकर और बोतल देव के हाथ से लेकर, वह बडी तत्परता से, मदिरा ढालकर, गिलास अपने पिता को देता है ।]

बसन्तलाल : (गिलास दीनदयाल की ओर बढाकर) *अरे तुम ने लिया ही नहीं, मै तो भूल ही गया, लो न* (और आगे बढाते हुए) *लो !*

दीनदयाल : (लालसाभरी दबी-दृष्टि से गिलास की ओर देखकर) *नहीं... नहीं......*

बसन्तलाल : (बरबस गिलास उसके हाथों में देते हुए) *अरे लो ।*

दीनदयाल : (गिलास को एक ही घूट में खाली करके और पेय की कडुवाहट के कारण तनिक खाँस कर और रुमाल से मुँह साफ करके) *तुम्हें तो पता है, मै रवि और मंगल के दिन नहीं पीता ।*

बसन्तलाल : (अपने लिए पैग बनाते हुए) *और ये साले कहते है कि तुम शराबी हो ।* (गिलास खाली करके अपने पुत्रों को सम्बोधित करते हुए) *देखो कितना सयम है दीनदयाल में ! मंगल और रवि के दिन यह बिलकुल नही पीता* (शून्य में हाथ से घेरा बनाते हुए) *यह इस युग का राजा जनक है, धन और ऐश्वर्य्य में रहते हुए भी सर्वथा निर्लिप्त !*

[पीछे की ओर लेट जाते हैं ।

चचा चाननराम प्रवेश करते है । डाक्टर हसराज और दूसरे भाई उठकर 'नमस्ते' करते हैं ।

चचा चाननराम पंडित बसन्तलाल के पाँव छूते हैं ।]

बसन्तलाल : (उठकर आशीर्वाद देते हुए) *चिरंजीव रहो* (फिर अपने पुत्रों से) *एक तुम हो कि अपने शिष्ठाचार और सभ्यता को*

लिये फिरते हो। बड़ों का सत्कार इस तरह किया जाता है। नकल उतारते हुए—'चचा जी नमस्ते'—साले नमस्ते के—प्रणाम करो सब !

[फिर टाँगें तिपाई पर रख लेते है और पीछे को लेट जाते है। सब भाई बारी बारी चचा चाननराम के घुटनों को छूते है। और वे 'चिरजीव रहो', 'चिरजीव रहो' कहते हुए दीनदयाल के साथ वाली कुर्सी पर डट जाते है।]

चाननराम : (नये मिले सत्कार से फूल कर, बैठते ही) *मैं कहता हूँ, अब जगह ख़रीदने और कोठी बनवाने का पचड़ा मोल लेने की ज़रूरत नहीं।*

(डा० हंसराज प्रश्नसूचक-दृष्टि से देखते हैं।)

— : *तीस हज़ार में बनी बनायी कोठी मिल सकती है, मेरा मित्र है लज्जाराम कमीशन-एजेंट। उसने मुझे उस कोठी का पता बताया है। गैरेज है; लान है; ड्राइंगरूम है; दस कमरे हैं; सुन्दर गुसलखाना हैं; .फ्लश सिस्टम का पाखाना है, छोटी सी बैडमिटन कोर्ट है, मै कहता हूँ, क्या नही, और फिर इर्द गिर्द चार दीवारी है—चाहो तो मज़े से वहाँ अखाडा बनवा लो, मुगदर रख लो !*

बसन्तलाल : *बस वह कोठी ले लो... ..*

डा०हसराज : *मै देख लूँ !*

बसन्तलाल . *देखने की क्या जरूरत है, चाननराम ने जो देख ली है।*

चाननराम : *मेरे मित्र लज्जाराम ने कहा कि पं० बसन्तलाल के लिए उस से अच्छी कोठी सारे लाहौर में कहीं नहीं मिल सकती और दुनिया इधर की उधर हो जाय, मेरा मित्र झूठ नहीं बोल सकता।*

दीनदयाल : *साधारण दलाल से जो वह इतना बड़ा कमीशन-एजेन्ट बन गया है कि दो दो कारें उसके दरवाज़े पर खड़ी रहती हैं,*

यह सब उसकी सत्यवादिता ही का तो चमत्कार है।

डा०हंसराज : बहर हाल मै तीस हज़ार का चैक कोठी के खाते काट रखता हूँ, पर पहले मैं उसे देखूँगा ज़रूर।

चाननराम : मेरे मित्र लज्जाराम ने मुझे रियायती दाम बताये हैं।

बसन्तलाल : लज्जाराम बडा श्रेष्ठ व्यक्ति है।

दीनदयाल : इसमें क्या सन्देह है।

चाननराम : (डा० हसराज से) और कहो बेटा, तुमने कौन की जगह अपने काम के लिए पसन्द की ?

डा०हंसराज : (फिर अपने पिता के पाँव दबाते हुए) जगह तो मैने पसन्द कर ली है और आप भी पसन्द कर लेंगे। माल पर है, और बिलकुल अलग है, पर किराया वे छै महीने का पेशगी माँगते है।

चाननराम : हाँ किराया तो माँगेंगे ही। पर क्या डर है, यदि जगह अच्छी हुई तो दे देना। कहाँ है ?

डा० हंसराज : अजी वही जो हालरोड और मालरोड के चौराहे पर है।

चाननराम : (लगभग उछल कर) चौराहे पर— तब तो मेरे मित्र लज्जाराम ने ठीक ही कहा था, टैम्पलरोड के बिलकुल पास ! वहीं वह कोठी है, जिसका मैने जिक्र किया।

डा०हसराज : बेहद मौके की जगह है—एक ओर माल है दूसरी ओर हाल। छोटा सा लॉन आगे है, गैरेज भी है, और मोटर के लिए गोल मार्ग बना हुआ है। (धीरे से) प्रैक्टिस जमाने के लिए मोटर तो रखनी ही पड़ेगी।

चाननराम : किराया क्या है ?

डा० हंसराज : तीन सौ रुपया मासिक !

चाननराम : ऐसी कोठी का तो साल भर का किराया पेशगी दे देना चाहिए।

बसन्तलाल : (जो इस बीच में नशे में गुट पड़े रहे हैं) दो साल का पेशगी दे दो !

दीनदयाल : (जो शायद चुप बैठा बैठा ऊब गया है और जिसे सहसा अपनी मशीन के बेचने का ख्याल आ गया है ।) जगह भी तो माल पर है ।

डा० हंसराज : और वहाँ दस एक बिस्तर भी आ सकते है—बीमारो के— मैं जो सेनीटोरियम खोलना चाहता हूँ, उसकी नींव इसी तरह तो पडेगी । खास खास रोगियों का उपचार मै वहाँ किया करूँगा । और अपनी प्रसिद्धि के लिए अपनी सेवाएँ किसी फ़्री अस्पताल को फ़्री* दे दूँगा । डा० लूम्बा क्या करता है ? राधेश्याम फ़्री अस्पताल में उसने अपनी सेवाएँ फ़्री दे रखी है, पर आपरेशन जो वह करता है, उनमें से ७५ प्रतिशत सीधे स्वर्ग के पास्पोर्ट सिद्ध होते हैं । किन्तु इसी तरह तो अनुभव प्राप्त होता है । और आप देख लीजिएगा, कल लूम्बा शैतान की भाँति प्रसिद्ध हो जायगा । जिसके हाथों कम के कम सौ आदमी मुक्ति न पा जायँ, वह सर्जन कैसा !

चाननराम : तुमने कृष्ण के सम्बन्ध में भी कुछ सोचा ?

डा० हंसराज: मै उसे अपने साथ रखूँगा । शुरु, शुरु, में उसका उत्साह बढाने के लिए जो आप कहेगे, दे भी दूँगा । और मै आपको विश्वास दिलाता हूँ, मेरे साथ यदि वह दो वर्ष रह गया तो निपुण सर्जन बन जायगा ।

चाननराम : वह स्वयं होशियार है । कालेज में प्रोफ़ेसर उसकी प्रशसा करते थे । वह तो कहता था— मुझे अलग से दुकान खोल दो ! पर मुझ में हिम्मत नहीं ।

डा० हसराज : सब कुछ पिता जी पर निर्भर है, मैं आपकी भरसक सहायता करुँगा । कृष्ण......

बसन्तलाल : (खुमारी से जागते हुए) कृष्ण बड़ा श्रेष्ठ लड़का है ।

---

* निशुल्क ।

(आँखे बन्द किये हुक्का गुड़गुड़ाते है ।)

चाननराम : आप भाई साहब, हंस को मालरोड पर दुकान क्यों नहीं खुलवा देते। अब मौके की जगह मिल रही है, फिर कौन जाने वर्ष भर जगह न मिले। वहाँ दुकान खोलते ही हंस का नाम प्रान्त भर में प्रसिद्ध हो जायगा।

बसन्तलाल : (पूर्ववत् आँखे बद किये) तो खोल लो वहाँ ?

चाननराम : खोल कैसे लें ? कल आप तो रुपया उड़ा दें और इसके लिए उस दुकान का किराया देना कठिन हो जाय। देखो भाई, हंस के नाम तीस चालीस हज़ार रुपया लगा दो।

डा० हंसराज : तीस चालीस हज़ार से क्या होगा (दीनदयाल से) क्यों चचा जी, सामान तो आपके यहाँ से ही आयगा। माल पर दुकान जमाने के लिए बीस हज़ार तो सामान ही पर लगाना पडेगा और फिर कार भी रखनी पडेगी और शोफ़र भी और नौकर भी।

[पंडित बसन्तलाल उठकर देव की ओर हाथ बढ़ाते है। डा० हंसराज गिलास में काफ़ी पेय डाल कर उनको देते है।]

— : (अपनी बात जारी रखते हुए) कम से कम पचास हज़ार तो मुझे दिया जाय।

चाननराम : पचास हज़ार से कम मे कैसे काम चल सकता है।

दीनदयाल : माल पर लाख भी लग जाय तो अधिक नहीं।

बसन्तलाल : (गिलास खाली करके मूछे पोंछते हुए) तो पचास हज़ार लिख लो ! (गिलास मेज पर पटक कर पीछे, लुढ़कते हुए) देव कुछ गाओ !

(देव चुप रहता है।)

— : (उसी प्रकार नशे में आँखे बद किये कड़क कर) गाओ !

देव : जी मैं......

बसन्तलाल : मै कहता हूँ गाओ ! (जोर से हवा में हाथ घुमाते है, हुक्का गिर जाता है, और चिलम दूर तक लुढकती चली जाती है) गाओ !

(अत्यन्त बेसुरे तौर पर देव गाना आरम्भ करता है ।)

'ओ जीने वाले. . . . हँसते हँसते जीना !'

बसन्तलाल : (उठकर झूमते हुए) चल साले, तू क्या गायेगा ? मैं गाता हूँ ।

डा० हंसराज : (हस्ताक्षर करने के लिए चैक बुक अपने पिता के सामने करके फाउँटेनपेन उनके हाथ में देते हुए) पिता जी जब गाया करते थे तो उनका स्वर मीलों तक लहराता चला जाता था ।

[सब चैकों पर हस्ताक्षर करके, बोतल का शेष पेय गले में उँडेल कर, लडखडाते हुए पडित बसन्तलाल उठते हैं और थथलाती, लेकिन अत्यन्त सुरीली और ऊँची आवाज मे गाना शुरू करते हैं ।

'दे डारो राधे रानी बासुरी मोरी'

किन्तु उनका स्वर फट जाता है और वे लडखडाते हुए कुर्सी पर गिर पडते हैं ।]

— : जब मैं स्कूल में पढता था तो कृष्ण बना करता था, और मेरा स्वर.. ...पर अब इस साली शराब ने मेरा सत्यानाश कर दिया है । मेरा स्वर नही रहा, मेरा कंठ नही रहा, मेरी देह नही रही । (सहसा कठ भर लाते है ।) देखो बेटा, इस साली को मुँह न लगाना, इस साली ने......

[हुक्के को हाथ से टटोलते हुए नशे में बेहोश हो जाते हैं ।]

डा० हंसराज : ये तो गुट हो गये !

बसन्तलाल : (उठने का विफल प्रयास करते हुए) कौन कहता है ? मै अभी पूरी की पूरी बोतल चढा सकता हूँ । दीनदयाल आओ...

दीनदयाल : (उठता हुआ) तुम्हें तो मालूम है, मैं मंगल और रवि के दिन नहीं पीता ।

बसन्तलाल : आओ साले ·····

(फिर मदहोश हो जाते हैं । पर्दा गिरता है ।)

(पर्दा धीरे धीरे उठता है ।)

[सामने स्टेज पर अँधेरा है, किन्तु प्रकाश से सहसा अंधकार में आने पर यद्यपि आँखें कुछ भी नहीं देख पातीं, पर उससे तनिक अभ्यस्त होने पर वे देखना आरम्भ कर देती है । और फिर यहाँ तो सामने के दरवाज़ों के शीशे अन्दर के प्रकाश के कारण चमक रहे हैं । इसलिए कुछ कुछ दिखायी देने लगता है ।

सामने एक बरामदा है, वह हमारा पूर्व-परिचित बरामदा है या कोई और, यह बात निश्चय के साथ नहीं कही जा सकती । सामान उसमें कुछ नहीं और शायद इसीलिए कुछ खुला-खुला-सा दिखायी देता है, केवल एक ओर एक चारपाई बिछी नज़र आती है और अंधकार से तनिक और अभ्यस्त होने पर हम देखते हैं कि उस पर कोई सोया हुआ भी है ।

एक-दो बार कुछ अव्यवस्थित से ख़ुर्राटों की आवाज़ भी आती है, फिर ख़ामोशी छा जाती है ।

फिर दो छायाएँ स्टेज पर आती हैं ।]

एक : *नहीं नहीं चचा जी, आप हमारी ख़ातिर यह कष्ट न*

कीजिए, भला मैं यह कैसे सहन कर सकता हूँ कि हमारे लिए आपको चार पाँच हजार की हानि सहन करनी पडे। आप उस मशीन को बेच दीजिएगा।

दूसरी : किन्तु इतनी सस्ती और अच्छी मशीन आप लोगो को इतने सस्ते मे हाथ न आयगी और फिर और दस दिन तक उसकी कीमत दुगनी हो जायगी।

[आगाज से हम जान लेते है कि ये दो छायाएँ डा० हसराज तथा दीनदयाल के अतिरिक्त कोई नहीं।]

डा० हंसराज : (गम्भीरता के आवरण में आवृत्त व्यंग्य से) तो मेरी राय में आप उसे अभी और दस दिन तक रख छोड़ें, जब उसकी कीमत दुगनी हो जाय तो उसे बेच डालें ... ..

दीनदयाल . मुझे तो प० बसन्तलाल का ख़याल था।

डा० हंसराज: उनका खयाल अब आप छोड़ दें। आपने उनका पहले ही कम ख़याल नहीं रखा।

दीनदयाल : (व्यंग्य को सुना अनसुना करके) परन्तु हरि .....

डा० हंसराज : हरि का अभी प्रेस को विस्तार देने का कोई इरादा नही।

दीनदयाल : पर तुम ने ......

डा० हंसराज : हाँ मैने तो कहा था, पर हरि ठहरा अस्थिर चित्त का व्यक्ति! तब उसका विचार था कि प्रेस चलायगा, बढायगा, अब मैं देख रहा हूँ कि वह पहला भी बेच कर कही काश्मीर, नैनीताल जाने की सोच रहा है। कवि तथा पागल को तभी तो विद्वानों ने एक उपाधि दी है।

दीनदयाल : (वंश का शुभचिन्तक) समय बडा कठिन है। ऐसे वक्त तुम उसे किस प्रकार यों बेकार आवारागर्दी करने की सलाह दे सकते हो, मेरे पास जो मशीन है... .....

डा० हसराज : लेकिन चचा जी, मशीन को लेकर वह करेगा क्या? कागज़ तो बाजार में मिलता नहीं। जितना कागज़ निकलता है, वह तो सरकार अपने दफ्तरों के लिए ले

जाती है—और दफ्तरो में आप जानते हैं, दो पक्तियाँ लिखनी हों तो पूरा फुलस्केप का कागज नष्ट कर दिया जाता है — बाहर से कागज आता नही। बडे बडे पुराने जमे हुए छापेखानों के स्वामी अस्थायी रूप से काम बन्द करने की सोच रहे है, फिर बेचारा हरि तो इस झंझट को पहले ही चला नही पाता।

दीनदयाल : खैर उसकी इच्छा! पर तुम माल पर दुकान खोल रहे थे, तुम्हे सामान चाहिए था और तुम ने कुछ भी पता नही दिया।

डा० हसराज : मुझे युद्ध में खेमे सप्लाई करने का ठेका मिल गया है। हिस्सेदारी तो है, पर ठेका भी पाँच लाख का है।

दीनदयाल : किन्तु मैने तो तुम्हारे लिए सामान मँगा रखा था।

डा०हसराज : (व्यग्य से) आपके दुगने हो जायँगे, कुछ दिन और रख छोड़िए!

दीनदयाल : (निरन्तर हमलों से घबराये बिना) परन्तु.....

डा० हंसराज : मै तो पहला भी बेचने की सोच रहा हूँ।

दीनदयाल : (अडिग पर आश्चर्य से) हरि भी मशीन बेचना चाहता है और तुम भी सामान बेचना चाहते हो।

डा० हंसराज : आप विश्वास कीजिए। जब इसमें लाभ ही नही तो क्या करें। वह छापेखाने में बैठा दिन भर मक्खियाँ मारा करता था और मै दवाखाने में। वह कवि है, इस लिए ज़रूरी नहीं कि एक ही व्यवसाय को गले में बाँध रखे और मै कवि नही कि सदेव एक ही व्यवसाय का ढोल पीटता रहूँ।

दानदयाल : तुम्हारी यह परस्पर-विरोधी बात मेरी समझ में नहीं आयी।

डा० हंसराज : बात यह है कि कवि स्वभावतया अस्थिर-प्रकृति का व्यक्ति होता है और किसी एक व्यवसाय को अपनाये रखना उसके

बस की बात नही होती, किन्तु यदि वह ऐसा करता भी है तो केवल भावुकता-वश। और फिर यदि भावुकता-वश वह एक व्यवसाय को अपना ले तो शीघ्र वह उसे नही छोड़ता, चाहे उसके प्राण भी क्यों न वहीं होम हो जायँ। व्यापारी आदमी निरन्तर हानि होने पर भी जहाँ एक व्यवसाय मे टिका, समझिए वह कवि हो गया। मैं शुद्ध व्यापारिक बुद्धि रखता हूँ। मैं कवि नही, इसलिए क्यों एक खसारे के काम को गले लगा रखूँ।

दीनदयाल : (तनिक और समीप होकर भेद भरे स्वर में) तो देखो जब तुम सामान अथवा मशीन बेचने लगो, मुझसे पूछ लेना, मै मेंहगे से मेंहगे दाम पर तुम दोनों की चीजें बिकवा दूँगा।

[दीनदयाल की छाया अलोप हो जाती है, एक दूसरी छाया आती है।]

— : दीनदयाल आया था?

[आवाज से हम जानते हैं कि यह डा० हंसराज की जीवनसगिनी श्रीमती कमला देवी हैं।]

डा० हंसराज : मैने उसे धता बता दी।

कमला : पर आपने तो वचन दिया था।

डा० हसराज : वचन न देता तो ये लोग पिता जी को भड़का न देते— रिश्वत.. रिश्वत.. रिश्वत! आज की दुनिया में जितने काम इससे निकलते हैं, उतने किसी से नहीं निकलते। फिर इस रिश्वत का रूप रुपया भी हो सकता है, भेंट-पुरस्कार भी, प्रशंसा भी, खुशामद भी और लूट का हिस्सा भी— ये दोनों चचा साहबान आसानी से जितना धन लूट सकते थे, लूट चुके थे। और लूटने के लिए इन्हें बहाना चाहिए था। वह बहाना उपस्थित करके मैंने इन्हें अपने और दूसरे भाइयों के मामले में चुप रहने की रिश्वत दी। दीनदयाल ने समझा हरि उसकी वह पुरानी मशीन

ख़रीद लेगा (जिसे आज आठ वर्ष से सारे लाहौर में किसी ने खरीद नही किया) और हसराज माल पर दुकान खोलेगा, तो उसे सामान सप्लाई करने के बदले गहरी रकम हाथ आयगी और चचा चाननराम ने सोचा कि उनका वह नालायक लड़का सर्जन बन जायगा—रिश्वत ! आज उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिए इससे अच्छा कोई साधन नहीं, कल की बात मै कह नही सकता ।

[छायाएँ लुप्त हो जाती हैं और क्षण भर के लिए स्टेज पर रोशनी हो जाती है, बरामदा ख़ाली है । एक ओर चारपाई पर कोई सोया हुआ है, उसके परेशान खुर्राटों की आवाज फिर सुनायी देती है ।

स्टेज पर फिर अँधेरा छा जाता है । दो छायाएँ एक दूसरी का पीछा करती हुई आती है ।]

एक : (आवाज गुरु की है) *नहीं माँ, मुझे तंग न करो । मै आई० सी० एस० बनने के लिए भाग दौड़ कर रहा हूँ । यदि किसी को पता चल गया कि मेरा पिता वहाँ सब्ज़ी मडी अथवा लंडे बाज़ार की नालियों मे औंधे मुँह पड़ा रहता है तो मेरा सब भविष्य नष्ट हो जायगा ।*

[दामन छुडाकर भाग जाता है । माँ की छाया उसके पीछे जाती है और अनुनय के स्वर में चीख़ती है ।—]

माँ : *पुत्र, पुत्र.....*

[गुरु की छाया निकल जाती है । एक और छाया प्रवेश करती है ।]

माँ : *देव......*

(माँ उसकी ओर बढ़ती है ।)

देव : (बचता हुआ) *नहीं माँ, उन्हें रखना मेरे बस का रोग नहीं । मैं डरता हूँ । मुझे उनके पास बैठते हुए भय आता है । वे आज भी थप्पड़ जमाने और गालियाँ देने को तैयार*

हो जाते है । अपने यहाँ रखना तो दूर रहा, मै तो उनके पास तक नही जा सकता ।

(कन्नी कतरा कर निकल जाता है ।)

माँ . (उसके पीछे जाती हुई) पुत्र.. पुत्र .

[एक और छाया प्रवेश करती है। हाथ में बैग आदि थामे हुए ।]

माँ : (उसकी ओर बढ़ती हुई) बेटा हरि, तेरे पिता की हालत...

हरि : मुझे यहाँ नहीं रहना माँ, मुझे अभी शान्ति निकेतन जाना है । (गर्व से सीना फुला कर) तुम्हें नही मालूम, मेरी ख्याति पख लगा कर उड़ चली है । मुझे जगह-जगह से निमन्त्रण आ रहे है । मै शान्ति-निकेतन अपनी कविताओं पर एक भाषण देने जा रहा हूँ। जब लोगों को पता चलेगा, मैंने किन कठिन परस्थितियों में परिवरिश पायी है, मेरा पिता कितना क्रूर तथा निर्दयी है तो वे मेरी प्रतिभा पर आश्चर्यान्वित रह जायेंगे। आज ही मुझे शान्ति-निकेतन चला जाना है ।

[तेज तेज़ चला जाता है । एक और छाया प्रवेश करती है ।]

माँ : (उसकी ओर बढ़ती हुई) बेटा हस, तुम भी अपने पिता की हालत पर तरस न खाओगे तो कौन खायेगा, पुत्र ......

डा० हंसराज : मैं तुम्हें कितनी बार कह चुका हूँ कि मुझे तग न करो। क्यों बार बार मेरी जान खाती हो । यदि उन्होंने सब रुपया गँवा दिया है तो इसमे मेरा क्या दोष है, यदि वे फटे हाल रहना चाहते है तो मैं क्या करूँ ।

माँ : उन्होंने तुम्हें......

डा० हंसराज : मान लिया उन्होंने मुझे यह सब कुछ ।बनाया, परन्तु क्या मैं भी इस सब को उनकी भाँति गँवा दूँ । फटे हाल, तार तार कपडे लिये शराबखानों में घूमता फिरूँ, गालियाँ दूँ,

गालियाँ खाऊँ, नालियो में गिरता फिरूँ, मक्खियाँ मुझ पर भिनभिनायें और कुत्ते मेरा मुँह चाटें।

माँ : पुत्र.. ...

डा० हंसराज : मैने क्या कुछ नहीं किया। उन्हे अच्छे बगले में, अच्छे से अच्छे कपडों में आवृत रखा। चूकि शराब उनकी हड्डियों मे रच गयी है और वे उसे छोड नही सकते, इसलिए अच्छी से अच्छी शराब तक उन्हें पीने को दी, पर वे उस कोठी को पिजरा और उस क़ीमती शराब को कुल्हिया का पानी समझते रहे। फिर मैं क्या करूँ?

माँ : पुत्र......

डा० हंसराज : और मै चाहता क्या था? केवल थोड़ा-सा शिष्टाचार! मात्र थोडी-सी सभ्यता!! लेकिन उन्हें भरे बाज़ार ज़ोर-ज़ोर से ऊँचे बोलना, गालियाँ देना, गालियाँ खाना, पीटना पिटना और अपने यारों के साथ मस्त झूमते फिरना पसंद है—कमीज़ खुली है तो इसकी उन्हें परवाह नहीं, धोती लटक रही है तो इसकी उन्हें चिन्ता नहीं, सिर या पाँव नंगे है तो इसका उन्हें ध्यान नही—इस स्थिति में मैं उनकी क्या सेवा कर सकता हूँ। मै स्वयं उन सा तो होने से रहा और उनके साथ वही रह सकता है, जो उन-सा हो जाय!

माँ : पुत्र, आख़िर वे तुम्हारे पिता......

डा० हंसराज : मैं किसी का पुत्र नहीं। कोई मेरा पिता नहीं। आज मैं इतनी मेहनत, इतने परिश्रम, इतनी दौड़ धूप के बाद सफलता की सीढ़ी पर चढ़ा हूँ। क्या तुम चाहती हो, मैं फिर नीचे जा रहूँ—मुझे नित नयी पार्टियाँ, नित नये डिनर देने होते हैं। कहाँ लाकर रखूँ मैं उन्हें अपने यहाँ?

माँ : किन्तु उन्हें तुम रुपये .

डा० हंसराज . उन्हें रुपये देनेका मतलब धनको अंधे गदे कुएँ मे फेंकना है।

रुपये का उनके समीप कोई महत्व नहीं। मिट्टी के ढेलों की भाँति वे उन्हे उछाल देते हैं। उनको दिये गये रुपये सब्जी मंडी, लोहारी अथवा लंडा बाजार के शराब खानों की नालियो के कीडे बनते हैं।

(चले जाते है।)

[माँ निमिष भर सिर थामे खडी रहती है, फिर डा० हसराज के पीछे जाती है कि दायीं ओर से एक और छाया आती है। माँ उसकी ओर बढ़ती है और पुकारती है :—]

माँ : *कैलाश!*

कैलाशपति : *मुझ से तुम क्या कहती हो, इतना ही क्या कम है कि मैं उन्हें कुछ नहीं कहता। कोई दूसरा होता तो अब तक कब का पकड़ कर जेल में ठोंस देता। शराब पीकर वे इतना अँधेर मचाते है कि मेरी सब की सब व्यवस्था भङ्ग हो जाती है। उनके कारण मेरे इलाके मे मेरा कोई रोब नहीं रहा। मैं पुलिस-इंस्पेक्टर हूँ, घसियारा नहीं। किन्तु उनके कारण मेरी अवस्था घसियारों से भी गयी बीती है, भरे बाज़ार में वे मुझे आधा नाम लेकर पुकारते है, मेरे मातहतों के सामने वे मुझे गालियाँ देने लगते हैं। मैंने अपनी तब्दीली के लिए प्रार्थना की है। यदि मुझे तब्दील न किया गया, तो मुझे विवश होकर उन्हें सीखों के अन्दर देना पड़ेगा।*

(चला जाता है।)

माँ : *पुत्र होकर तुम अपने पिता को सीखों के अन्दर दोगे* (दोनों हाथों से कनपटियों को मींजती हुई चीखती है) *तुम्हे शर्म नहीं आती* (धीरे से जैसे अपने आप) *क्या मैंने अपनी कोख से सब कपूत जने। क्या तुम में एक भी ऐसा नहीं जो अपने माता-पिता को उनकी सब त्रुटियों, उनके सब व्यसनो के साथ अपने पास इज्जत से रख सके। पुत्र ऐब करते*

है। माँ-बाप डाँटते हैं, झिड़कते हैं, किन्तु उन्हें गले से लगा लेते हैं—और तुम, जिनका एक एक अणु हमारे रक्त से बना है, जो हमारे कारण इस ऊँचाई पर चढे हो—अपने पिता को जेल में भेजने को तैयार हो (चीखती है)—तुम सब कपूत हो, तुम सब बेशर्म हो, नीज मैंने तुमको जना।

[गिर पडती है, अचेत हो जाती है, दायीं ओर से एक और छाया धीरे धीरे उसके पास आती है, उसे हवा करती है, और आवाज देती है]

नई छाया : माँ!

(फिर हवा करती है।)

—. माँ

(माँ की छाया सहारे से उठती है और बैठती है।)

नई छाया : माँ

माँ की छाया : तुम कौन हो?

नई छाया : मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, मैं दयालचन्द हूँ।

माँ की छाया : (गदगद् होकर) दयालचन्द...मेरा छोटा बेटा (उसे आलिंगन में ले लेती है) कहाँ था तू (आर्द्र स्वर से) देख तेरे भाइयों ने हमें किस तरह दुत्कार दिया है। तेरे पिता दो दिन से सब्ज़ी मंडी में औंधे मुँह बेहोश पडे है।

दयालचन्द : मै उन्हें वहाँ से जाकर उठाऊँगा, उनकी हर सेवा करूँगा।

माँ : उन्हें तीन लाख रुपया आया था। वे तुम्हें ढूँढना चाहते थे, पर सब रुपया तेरे भाइयों ने उनसे लूट लिया। तू क्या करता है, आजकल कहाँ रहता है?

दयालचन्द : मै गाड़ियों पर सोडा बर्फ़ बेचता हूँ माँ!

माँ :(अत्यधिक आर्द्र स्वर में) पुत्र!

[उसे और भी जोर से अपने आलिङ्गन में खींच लेती है, और सिसकती है।

छायाएँ लुप्त हो जाती हैं, रंगमंच पर रोशनी हो जाती है।]

[वही डाक्टर हसराज के पोर्शन का बरामदा है। सब खाना खा चुके हैं, इसलिए चटाइयाँ आदि शायद उठा दी गई हैं, कुर्सियाँ मेज़ भी अन्दर पहुँचा दिये गये हैं और बरामदे में केवल वही चारपाई बिछी है, जिस पर अत्यधिक मद्यपता की अवस्था में पंडित बसन्तलाल को लिटाया गया था। वे अभी तक शायद लेटे हुए हैं। क्योंकि करवट लेते समय उन की चादर खिसक जाती है, और हम उन्हें पहचान लेते हैं।

रसोई घर से अभी तक हल्का हल्का धुआँ निकल रहा है।

रोशनी होने के कुछ क्षण बाद माँ रसोई-घर से निकल कर धीरे धीरे चारपाई के पास आती है और उन्हें हिलाती है।]

ज़ोर से हिलाती है। पंडित बसन्तलाल हड़बड़ा कर उठते है।]

माँ : *ऐ जी...ऐ जी...*

माँ : *मैं कहती हूँ, दो बजने को आये हैं। उठो, उठकर कु खा पी लो, मुझे भी दो कौर निगलने है।*

बसन्तलाल : (निद्रित तथा पूर्ववत् थथलाती हुई आवाज़ में) *मैं पूछता ह दयालचन्द !*

माँ : (आँखों में चमक आ जाती है) *दयालचन्द !*

बसन्तलाल : *मेरा छठा बेटा !*

[तभी उनकी दृष्टि धरती पर गिरे हुए लाटरी के टिकट पर चली जाती है। वे उसे उठा लेते हैं, उसे आँखों के पास ले जाकर पढ़ते हैं। तभी सब कुछ उनके सामने साफ़ हो जाता है। सिर झुक जाता है और एक दीर्घ-निश्वास उनके ओंठों से निकल जाता है।]

(पर्दा सहसा गिर पड़ता है।)

समाप्त